

# श्री अरविन्द, कर्मधारा

नवम्बर-दिसम्बर





## श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

नवम्बर दिसम्बर-2022

अंक -6

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन

अपर्णा राँय

विशेष परामर्श समिति

सुश्री तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द

आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाष: 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

## नव वर्ष

जन्म नया ले नई चेतना  
जन्म ले रहा नव संवत्सर,  
पीछे दूर छोड़कर गत को  
दौड़े आगे, भावी भास्कर  
लेता वर्ष विराम, परम प्रभु!  
हम कृतज्ञ हैं नत तव सम्मुख,  
जन्म पुनः ले रहा वर्ष यह  
पूर्ण प्रार्थना हो प्रभु-उन्मुख; हम सबके हित भी हो  
वे यह अभिनव जीवन का प्रभात वर!  
जन्म नया ले नई चेतना,  
जन्म ले रहा नव संवत्सर!

-श्रीमां

(अनुवाद- सुरेशचंद्र त्यागी)





## प्रार्थना और ध्यान

हे समस्त वरदानों के वितरक, तुझे, जो इस जीवन को शुद्ध सुंदर और शुभ बनाकर उसे औचित्य प्रदान करता है, तुझे हे हमारे नियति के स्वामी, हमारी अभीप्साओं के लक्ष्य, इस नए वर्ष का पहला क्षण समर्पित था।

कृपा कर कि इस समर्पण के कारण वह पूरी तरह से महिमान्वित हो, जो तुझे पाने की आशा करते हैं वे तुझे ठीक मार्ग से ढूंढें, कृपा कर जो तुझे ढूंढते हैं वे तुझे पालें और जो यह जाने बिना कष्ट पाते हैं कि सच्चा उपचार कहां है, वे यह अनुभव करें कि तेरा जीवन थोड़ा-थोड़ा करके उनकी अंधेरी चेतना की कठोर पपड़ी को छेदता जा रहा है।

मैं प्रगाढ़ भक्ति और असीम कृतज्ञता के साथ तेरी हितकारी भव्यताओं के आगे प्रणत हूँ। पृथ्वी की ओर से मैं तुझे अपने आप को प्रकट करने के लिए धन्यवाद देती हूँ। मैं उसकी ओर से तुझसे याचना करती हूँ कि तू अपने आप को प्रकाश और प्रेम की अबाध वृद्धि में अधिकाधिक अभिव्यक्त कर।

हमारे विचारों हमारे भावों और हमारे कर्मों का प्रभुसत्ता संपन्न स्वामी हो जा। तू ही हमारी सत्ता की यथार्थता, एकमात्र सद्रस्तु है।

तेरे बिना सब कुछ मिथ्या और भ्रम है, सब कुछ दुख पूर्ण अंधकार है, तेरे अंदर ही है जीवन, ज्योति और आनंद। तेरे ही अंदर है परम शांति।

-श्रीमां





## संपादकीय

सुधि पाठक गण,

नव वर्ष की शुभ कामनाएँ

कहते हैं....,

जब वाल्मीकि ने अपनी रामायण पूरी की, तो नारद वहाँ आए, उन्होंने उसे पढ़ा मगर वे प्रभावित नहीं हुए। 'यह अच्छा है, लेकिन हनुमान बेहतर हैं', उन्होंने कहा।"

हनुमान ने रामायण भी लिखी है!...वाल्मीकि को यह कतई पसंद नहीं आया, और सोचा कि देखना चाहिए कि किसकी रामायण बेहतर है।

बस वह हनुमान को खोजने निकल पड़े।

केले के कदली-वन ग़ोव में, उन्होंने एक केले के पेड़ की सात चौड़ी पत्तियों पर रामायण अंकित पाई। उन्होंने इसे पढ़ा और पाया कि यह एकदम सही है। व्याकरण और शब्दावली, छंद और माधुर्य का सबसे उत्तम विकल्प। वाल्मीकि भावुक होकर वह रोने लगे।

क्या यह इतना बुरा है?' हनुमान ने पूछा

'नहीं, यह बहुत अच्छा है', वाल्मीकि ने कहा

तो तुम रो क्यों रहे हो?' हनुमान ने पूछा।

क्योंकि आपकी रामायण पढ़ने के बाद कोई मेरी रामायण नहीं पढ़ेगा,' वाल्मीकि ने उत्तर दिया। यह सुनकर हनुमान ने केले के सात पत्तों को फाड़ दिया और कहा, "अब कोई भी हनुमान की रामायण कभी नहीं पढ़ेगा।"

वाल्मीकि हनुमान की इस क्रिया को देखकर चौंक गए और उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। हनुमान ने कहा, 'तुम्हें मेरी जरूरत से ज्यादा तुम्हारी रामायण की जरूरत है। तुमने अपनी रामायण इसलिए लिखी ताकि दुनिया वाल्मीकि को याद रखे

मैंने राम को याद करने के लिए अपनी रामायण लिखी।'

उस पल वाल्मीकि ने महसूस किया कि कैसे वह अपने काम के माध्यम से लोकप्रियता की कामना के वशीभूत अहं का शिकार हो गए थे।

उनकी रामायण महत्वाकांक्षा की उपज थी, लेकिन हनुमान की रामायण शुद्ध भक्ति और स्नेह की उपज थी।





उपरोक्त कथा मात्र कथा नहीं बल्कि हम सबके लिए मार्गदर्शन और प्रेरक संदेश है। श्रीमां के अनुसार श्री अरविंद के योग पथ का अनुसरण करने वालों के लिए चेतना का उत्कर्ष अनिवार्य है। इस पथ के अनुयायियों के पास जगत का त्याग करके नीरव कंदरा में जाने का विकल्प नहीं बल्कि उन्हें इसी भौतिक जीवन को जीते हुए उसके सभी पक्षों के सर्वांगीण रूपांतरण हेतु प्रयासरत रहना होगा। चेतना के विकास के सजग और सचेतन प्रयास हेतु अनिवार्य है कि हम उनसे संपर्क स्थापित करने की निरंतर चेष्टा करें। हमारा प्रयास अपनी विविध सत्ताओं का चैत्यीकरण करना है। अपनी अंतरात्मा से परिचित होना आत्मा व लोगों द्वारा सभी पक्षों में समन्वित रूप से शुद्धिकरण की प्रक्रिया से गुजरते हुए निरंतर रूप से चैत्य से संपर्क बनाए रखना और उसके मार्गदर्शन का अनुसरण करना निश्चय ही चेतना के उत्कर्ष में सहायक होगा।

व्यक्तित्व के मानसिक, प्राणिक और शारीरिक पक्षों का चैत्य से संपर्क द्वारा स्वाभाविक रूप से उनमें चैत्य पुरुष के गुणों का समाहित होना, उनकी चेतना को क्रमिक रूप से विकसित करेगा। तदर्थ हमें चैत्य पुरुष की स्वभावगत विशेषताओं से परिचित कराते हुए श्री अरविन्द कहते हैं -

“चैत्य पुरुष के हृदय में एक दिव्य अभिलाषा है, एक अभीप्सा है, वह अपने यंत्रों की चेतना का आत्मा की चेतना में आरोहण संभव बनाना चाहता है और तत्पश्चात् उनकी बाह्य सत्ता का भी आत्मा के दिव्यता में दिव्यीकरण, उसका रूपांतरण करना चाहता है। उसकी अभिलाषा है कि आत्मा की दिव्यता यहाँ पृथ्वी के जीवन में प्रवाहित हो। मानव, दिव्य मानव बन जाए। दिव्य जीवन पृथ्वी की वस्तु हो, जो सत्य पदार्थों के भीतर छुपा है वह बाहर आए। आंतरिक दिव्यता यहाँ प्रकट हो, सृष्टि आत्मा के चेतन की उसके आनंद की उसके दिव्यता की सीधी अभिव्यक्ति हो, मनुष्य उसका रसास्वादन करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करें। साथ ही दूसरी ओर जो आत्मार्थों अपने विकास में अभी प्रारंभिक स्तरों पर हैं जिन्होंने अंतर मुखता का भाव ग्रहण नहीं किया उनके अंदर दिव्य पदार्थों के प्रति दिव्य जीवन के प्रति अभीप्सा जगाने में सहायता करें। चैत्य पुरुष का व्यक्तित्व दिव्य है। वह अपने यंत्रों को भी आत्मा के दिव्यता में रूपांतरित करने का अभिलाषी है। इस संस्कृति के पश्चात् ही संसार दिव्य मानवों के दिव्य जीवन का दिव्य क्षेत्र होगा। पृथ्वी पर फैली अदिव्यता, पशुता, असुरता आत्मा की दिव्यता में उसके देवत्व में रूपांतरित होगी। संसार का प्रत्येक व्यक्ति जब चैत्यपुरुष के स्वभाव में उत्थान लाभ करेगा, जब हम चैत्य प्रकृति धारण करेंगे, चैत्य चेतना में निवास जब हमारा स्वाभाविक जीवन-स्तर होगा, यहां सब मंगलमय होगा। सत्यम-शिवम-सुंदरम की सीधी अभिव्यक्ति का रूप धारण करेगा। वह एक स्वर्णिम काल होगा जिसे हम अति सरलता के साथ सत्य युग की संज्ञा प्रदान करेंगे जो वास्तव में अतिमानसिक युग का प्रारंभ होगा।”

श्री अरविंद के यह शब्द हमें एक बार पुनः प्रेरणा देते हैं कि हम अपनी चेतना के उत्कर्ष की ओर सजग और सचेतन रूप से निरंतर प्रयासरत रहें और अपने चरित्र को पहचाने, उसकी आवाज को सुने और उसके मार्गदर्शन का अनुसरण करते हुए श्री अरविंद के योग पथ पर अग्रसर हों। साथियों जैसा कि हम सभी जानते हैं कि यह श्रीअरविंद की 150 वीं जयंती- वर्ष चल रहा है, आइए हम उनके मार्ग का अनुसरण करते हुए उनके उस महत् कार्य में सहभागी बनने का संकल्प करें और उसे पूरा करने में प्रयासरत रहें।

हम सबकी चेतना का उत्कर्ष हो, इसी शुभकामना के साथ....

-अपर्णा





## विषय-सूची

1.	आध्यात्मिक शिक्षा – एक आत्मावलोकन	7
2.	आह्वान उसी का पाता हूँ	11
3.	कला व योग	12
4.	कैसे आऊँ जमुना के तीर	17
5.	भागवत प्रेम	18
6.	नियति और पुरुषार्थ	18
7.	सनातन धर्म के आधारभूत तत्त्व	22
8.	अन्तःजीवन	26
9.	पालता की पहचान	31
10.	नववर्ष के आगमन की प्रार्थना	32
11.	नव जन्म	33
12.	भगवद्वाणी (भागवत मुहूर्त्त से)	35
13.	दिव्य जीवन (से)	36
14.	भगवान और उनकी उपस्थिति	37
15.	आश्रम - गतिविधियाँ	44





## आध्यात्मिक शिक्षा – एक आत्मावलोकन

- डा. आलोक पाण्डे

उपनिषद् की एक सांकेतिक कथा हैं। नारद अनेक प्रकार के शास्त्र एवं विद्याओं में पारंगत हो चुके हैं। चौसठ कलाओं में वे निपुण हैं। परंतु यह सब कुछ सीखने और जानने के बाद भी उनके हृदय में एक गहरा असंतोष व्याप्त है। अपनी इस अन्तर्व्यथा का अर्थ उन्हें समझ में नहीं आता। कोई भी विद्या, कोई भी विशारद उनकी समस्या का हल उन्हें नहीं दे पाता। तब अपनी व्यथा को संजोय हुए अपने असंतोष का समाधान ढूँढ़ने नारद ऋषि सनत् कुमार के पास जा पहुँचते हैं। नारद जब अपनी व्यथा सनत्कुमार को समझाते हैं तो ऋषि पूछते हैं, -“हे नारद! तुमने अब तक क्या सीखा है? नारद अपनी नाना प्रकार की विद्याओं का वर्णन करते हैं। तब ऋषि मुस्करा कर कहते हैं, -‘नारद तुम्हारी व्यथा का कारण यही है कि अब तक तुमने जो कुछ सीखा है वह अपरा विद्या है। तुम्हारे ज्ञान की अभीप्सा का, तुम्हारे हृदय की व्यथा का, तुम्हारे जीवन के संकल्प का इनमें उत्तर नहीं है। ‘ नारद स्वाभाविक ही पूछ बैठते हैं, - ‘तो फिर वह क्या है जो इतना महत्वपूर्ण है, जो मैंने अब तक नहीं सीखा। ‘ऋषि उत्तर देते हैं, -‘ वह है ब्रह्मविद्या, जिसको जानने के उपरान्त ही सब कुछ जाना जा सकता है।’

यह कथा एक संकेत है। नारद की व्यथा आज भी हमारी पीड़ा में उपस्थित है। हम विद्यालय जाते हैं, बहुत कुछ पढ़ते सीखते हैं, अपनी पढ़ाई पर गर्व भी अनुभव करते हैं, परंतु वह सारी शिक्षा जैसे हमें जीवन से जोड़ नहीं पाती। उसमें हमें अपनी आत्मकथा का उत्तर नहीं मिलता। सूचनाएँ मिलती हैं, लेकिन सत्य छिपा रह जाता है। तकनीक का पता चलता है, पर ज्ञान पर चादर ढँकी रहती। कलाओं में महारत हासिल करते हैं, परंतु सौंदर्यबोध अधूरा रह जाता है। बाहरी परस्थिति बदलने की शक्ति तो प्राप्त होती है, परंतु अन्तर्व्यथा को सुलझाने की कुंजी खो जाती है। और जब हमें अपने अंतर में छिपी अभीप्सा का प्रथम स्पर्श होता है, तब होता है हमारी शिक्षा का सच्चा प्रारंभ।

प्रश्न उठता है, - क्या यह संभव है कि यह शिक्षा बालपन से ही प्रारंभ की जाए? अगर हाँ तो फिर इस शिक्षा का क्या स्वरूप हो, इसका सिद्धांत और प्राकृत रूप कैसा हो, इत्यादि, इत्यादि। भारत की परम्परा में ऐसे अनेक बालकों का उदाहरण मिलता है जिनको जीवन के प्रारंभिक दिनों से ही ब्रह्म-विद्या की शिक्षा दी गई थी। आरुणि, नचिकेता, श्वेतकेतु, कवश, ऐत्तरेय केवल नाम नहीं हैं, बल्कि एक संभावना का प्रतीक हैं। एक एसी संभावना जो हर मानव शिशु के अंदर विद्यमान है। और शिक्षा का, कम से कम सच्ची शिक्षा का उद्देश्य इस उच्चतम संभावना को प्रकट करना है।

माता जी शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करती हैं, -‘हम यहाँ भावी बालकों के लिये भविष्य का मार्ग। खोलने आए हैं। कैसी अद्भुत वाणी है यह, - भविष्य का मार्ग। एक भविष्य वह है जिसकी हम दिन रात चिन्ता करते हैं। बच्चों के भविष्य की बात आते ही हम सोचने लगते हैं, आज से 20 वर्ष बाद 50 वर्ष बाद। हमारा बच्चा पढ़-लिख कर एक महान आदमी बनेगा, सफल होगा, पदाधिकारी होगा, समृद्ध के सब सुख सुविधाओं से सम्पन्न होगा। स्वर्ग-भोग की यह कामना हम बच्चों के लिये करते तो है परंतु इन शब्दों का वास्तविक अर्थ खो बैठे हैं। हम भूल गये हैं कि बाह्य समृद्धि, आन्तरिक समृद्धि के अभाव में एक अभिशाप बन सकती है। भोग माल स्वर्ग में नहीं होता, रावण की लंका में भी सभी प्रकार का भोग और ऐश्वर्य था। परंतु उस लंका को, असुर अहम् के कारण अग्नि में भस्मीभूत होना पड़ा। अटलांटिस और ट्राय, हस्तिनापुर और रोम के समृद्धि समाज का भी यही हश्र हुआ। कारण स्पष्ट हैं, -स्वराज





के बिना साम्राज्य एक भिखारी के माथे पर हीरों के मुकुट के समान है। माता जी इन 20 या 40 वर्षों के भविष्य की, मानव-चेतना के भविष्य की बात कर रहीं। वे तो मनुष्य के भविष्य मानव-चेतना के भविष्य की बात कर रही हैं। सन् 1964 में जब माता जी से राष्ट्रीय शिक्षा के मूल दोष और उसके समाधान का मार्ग पूछा गया तो हमें सावधान करते हुए उनका उत्तर था - (क) (सबसे बड़ा दोष यह है) सफलता, पद और पैसे को अत्यधिक महत्व देना। (ख) समाधान यह कि) आत्मा से संपर्क और सत्ता के सत्य का विकास और उद्घाटन की आवश्यकता पर जोर देना।

माता जी शिक्षा के लक्ष्य की बात कर रही हैं, किसी सिद्धांत या प्रणाली की नहीं। क्योंकि सिद्धांत और प्रणाली लक्ष्य का ही एक मानसिक और व्यावहारिक स्वरूप है। अगर आत्मशिक्षा, ब्रह्मविद्या अति-आवश्यक है तो सिद्धांत भी आत्मा से जन्म लेगा। क्या सिद्धांत होगा इस अद्भुत शिक्षा का और इसका कैसा रूप हो। यहीं हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है। पिछले कुछ शतकों से हम अध्यात्म का अर्थ जगत को त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लेना या जगत को मिथ्या कह कर किसी अनिर्वचनीय, अरूप, अकल्प, अव्यक्त सत्ता में मिल जाना समझते आये हैं। इस पारलौकिक सिद्धांत के कारण आज हम आध्यात्मिक शिक्षा का विज्ञान से, कला से, शारिरिक परिश्रम और खेलकूद से, भाषा ज्ञान से, शस्त्र विद्या से, चिकित्सा से, तकनीकी से, राज्यकर्म से एवं अन्य विद्याओं से सामंजस्य नहीं बैठा पाते। फलस्वरूप हम आध्यात्मिक शिक्षा को एक धार्मिक या नैतिक मूल्यों की शिक्षा या आधुनिक शब्दों में जीवन-मूल्यों की शिक्षा मात्र मान बैठते हैं। परिणाम यह होता है कि बालक तरुणावस्था में आते ही इस पारलौकिक, अव्यवहारिक, शिक्षा को या तो जगत जीतने की प्रबल इच्छा के कारण पूरी तरह से त्याग देता है या फिर वह एक दोहरा व्यक्तित्व जीने लगता है जो धीरे-धीरे जीवन में एक अवकुण्ठा बन कर उसका पीछा करती है। इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण उसकी शक्ति का सृजनशीलता में उपयोग नहीं हो पाता। या फिर कोई बिरला बालक ईश्वर की खोज में जगत को ठुकरा कर समाज से, लोकसंग्रह के कर्म से बाहर आकर लुप्त हो जाता है। यह तीनों ही विकल्प अधूरे हैं, अपूर्ण हैं। माता जी आध्यात्मिक शिक्षा का सिद्धांत स्पष्ट करती हुई कहती हैं, - 'जड़ तत्व को आत्माद्घाटन के हेतु तैयार करना।

क्या यह संभव है। क्या उस परमचेतना में, इस निर्मल विशुद्ध सच्चिदानन्द भाव में, क्या सनातन सत्य में हमारी जड़ता का, खडता का, अपूर्णता का समाधान है? क्या ईश्वर को इस जगत में दिलचस्पी है? उपनिषद् की कथा, जिसकी हमने प्रारंभ में ही चर्चा की है स्पष्ट रूप में कहती है, - 'ब्रह्म-विद्या वह है जिसको जानने पर ही सब कुछ जाना जाता।' स्थान-स्थान पर हमें संकेत मिलता है, -सर्व खल्विदं ब्रह्मम्-जो कुछ भी है वह ब्रह्म ही है। गीता इसी तथ्य को दोहराते हुए अवश्य वृक्ष की तुलना देती है जिसमें जगत रूपी वृक्ष जड़ें ऊपर आकाश में बतलाई हैं। श्रीअरविन्द इस सत्य का उद्घाटन करते हुये बतलाते हैं कि सृष्टि एवं उसकी क्रिया-प्रक्रिया ब्रह्म से अलग नहीं हैं बल्कि उसी के प्रकाश से प्रकाशित है एवं उसी की परम शक्ति से प्रवाहित है। यह सृष्टि ब्रह्म के बीज से जन्मी है। इसका लक्ष्य ब्रह्म में वापस विलीन होना नहीं है। ब्रह्म में तो वह स्थित है ही। उसका लक्ष्य है इस ब्रह्म बीज में छिपी संभावनाओं को जन्म देना, ब्रह्म के अनन्त नाम-रूप की पुष्प-वाटिका बनकर खिल उठना। यह है सृष्टि का भविष्य, आध्यात्मिक भविष्य, और इसी भविष्य को खोलने की कुंजी माता जी हमें देना चाहती हैं। इसी अतिसुन्दर भविष्य के प्रति वे हमारी सभी संभावनाओं को प्रेरित करती हैं। और इस महत्व भविष्य के लिये ही वे परमा-शक्ति, जगत-जननी माँ हमें आध्यात्मिक शिक्षा का महत्व बतलाती हैं।

मनुष्य ने स्वयं को अहम् और क्षुद्र कामनाओं की सीमा में बाँध रखा है। माँ हमें इसी पाश से मुक्त करना चाहती हैं। मनुष्य पर बंधन ही उसकी व्यथा का प्रमुख कारण है। ज्ञान की सीमा, शरीर की अनित्यता, प्रेम और आनन्द की क्षणिकता, प्राण की अशक्तता ही उसकी अंतर्व्यथा का मूल कारण है। मनुष्य पर बंधन जगत का नहीं, अपने क्षुद्र अहम् का है। और यह अहम्-बोध तब तक नहीं जाता जब तक उसे आत्मा-बोध नहीं होता। अगर हम मेधा को असीम, वृहत् सत्य से जोड़ लें तो सृजनशीलता स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगेगी। और वह मानव सृजनशीलता की तरह भविष्य के प्रति अचेत, अशक्त, मात्र सुख सुविधाओं को भण्डार खड़ा करने वाली या सूचनाओं को पिरोने







वाली सृजनीशलता नहीं रहेंगी । वह रहेगी ब्रह्म की सृजनीशीलता जो प्रतिक्षण एक नवीन सृष्टि का निर्माण करती हैं । हमारी भावनाएँ अगर दिव्य प्रेम से आप्लावित हो जाएँ, हमारे प्राण अगर संयम धारण करके दिव्य कर्म के प्रति तत्पर हो जाएँ, ये इन्द्रियाँ यदि वासनाजनित भ्रामक क्षणिक कालोन्मुख सुख त्याग कर परमानन्द की उपासना में एक-निष्ठा हो जाएँ तो विश्व में स्वतःही एक नई संरचना, नए समाज, नए युग का निर्माण होने लगेगा; जो आज हमें छलता है और जिसे ढूँढने में विज्ञान और दोनों ही असमर्थ रहे हैं, वह जगत अपना आवरण हटा कर स्वयं ही अपना सत्-स्वरूप प्रगट कर देगा । क्योंकि समस्त पदार्थ, चेतना की सारी अवस्थाओं, सारी गतियों, सभी कलाओं, सभी शास्त्र एवं विद्याओं के मूल में एक अगाध स्रोत छिपा है जो निरन्तर सृजन कर रहा है । उस मूल को शिक्षा के माध्यम से पहचानना, और उसके प्रगटन में सहयोग देना ही आध्यात्मिक शिक्षा मूल सिद्धांत है । इस दिशा में पदार्थ विज्ञान और अध्यात्म-ज्ञान अलग नहीं होंगे बल्कि वे एक दूसरे के पूरक होंगे । पदार्थ के पीछे छिपी चेतना का, और चेतना के पीछे स्थापित सद्रस्तु का प्रगटन होगा विज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप । इसी प्रकार मन की नाना अवस्थाओं के पीछे कार्यरता चेतना की गति का, दिशा का, उन्मूलन का, रूपान्तरण का ज्ञान होगा मनोविज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप । कला के पीछे भी स्वयं को उद्घाटित करती एक सौंदर्य शक्ति का रहस्य है । उसे ढूँढना और संगीत-नृत्य-चित्र-इत्यादि के माध्यम से उसे प्रगट करना, यह है कला का आध्यात्मिक स्वरूप । इसी प्रकार समाज के संगठन, प्रकृति के नियम और अपवाद, भाषा एवं कविता की अभिव्यक्ति, शरीर की मुद्राएँ और आधि-व्याधि, इत्यादि सभी चेतना की अवस्थाओं के परिणाम हैं । उन अवस्थाओं को परखना, जानना और उन्हें सर्वशक्तिमान के संपर्क से बदलना, सही दिशा देना, यह है अनेकानेक विद्याओं का आध्यात्मिक स्वरूप । अगर ब्रह्म ही सबके मूल में है तो यही उचित है और शिक्षक का परम धर्म भी है कि वह विद्यार्थी को विद्या के माध्यम से उस मूल से संपर्क स्थापित करवाए ताकि विद्यार्थी की सृजनशीलता का द्वार खुल सके और वह मात्र सूचनाओं का केन्द्र नहीं बल्कि ज्ञान-प्रकाश का, मात्र भावुकता के भँवर में नहीं बल्कि प्रेम के आनन्द सागर का, क्षुद्र शक्तियों के झंझावात में फँसे इन्द्रिय-मन-प्राण में नहीं बल्कि अनन्त के विशाल शक्ति-पुंज का केन्द्र बन सके । और इसी में है सच्चे जीवन मूल्यों की भी शिक्षा । जीवन-मूल्य जीवन से अलग नहीं हैं, ना ही वे जीवन के परम उद्देश्य के मार्ग में अवरोध या बालक हैं । जीवन-मूल्य जीवन की दिशा और गति को और सबल बनाते हैं अगर हम उसमें आत्मा का प्रकाश उड़ेल दें । यही है आध्यात्मिक शिक्षा का सिद्धांत ।

अब एक शेष प्रश्न यह रह जाता है कि इस शिक्षा का व्यावहारिक स्वरूप कैसा हो? स्वाभाविक है ऐसी शिक्षा किसी मानासिक नियम के बंधन से या पुस्तकों के पठन-पाठन एवं पाठशाला के कार्यक्रम से नहीं बँधी होगी । आत्मा की ही भाँति वह एक अत्यधिक उन्मुक्त वातावरण में सरिता के प्रवाह की तरह बहेगी । उसकी गति भी काल से, मास से, या पुस्तकों की सूचना से निर्धारित नहीं होगी बल्कि अंतरात्मा की गति और अवस्थाओं से निर्धारित होगी । 'निर्बाध-प्रगति' (फ्री प्रॉग्रेस) के स्वरूप के विषय में माता जी ने स्पष्ट कहा है, -एक ऐसी प्रगति जो किसी नियम, आदत या पूर्वधारण से नहीं बल्कि आत्मा से प्रदर्शित होती है।' श्रीअरविन्द भी इस सत्य को सिद्धांत यह है कि कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता ।' अर्थात्, शिक्षा बाहर से आरोपित सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं है । शिक्षा है, - आत्मोद्घाटन । और आत्म प्रकाश के आलोक से सारे संसार का, स्वयं सत्ता और चेतना का नवीन मूल्यांकन तथा इस सही मूल्यांकन के बाद सत्य की शक्ति और सार्मथ्य से, सत्य के आवाह से एक नव-निर्माण ।

यह संभव तभी होगा जब शिक्षक और माता-पिता स्वयं आत्मोन्मुख हों । मात्र आत्मोन्मुख ही नहीं आत्म-प्रकाश से आलोकित हों, आत्माराम हों । किसी पुस्तक या प्रक्रिया से कहीं अधिक, आध्यात्मिक शिक्षा, यहाँ तक कि जीवन मूल्यों की भी शिक्षा, शिक्षक के, सन्निध्य एवं सम्पर्क से दी जाती है । पुस्तकों में लिखे और बाहर से थोपे हुए सिद्धांतों से कहीं अधिक प्रभाव जीवंत-आदर्शों का पड़ता है । हमारी आंतरिक गतियाँ, हमारे भाव, हमारी चेतना, विचार सभी कुछ हर क्षण प्रक्षिप्त होते रहते हैं और दूसरों को प्रभावित करते हैं । अगर हमने अपने अंतर में योगाग्नि जला रखी है, अगर हम अपने आत्म-यज्ञ में अपने अंतर नित्य-कर्म होम कर रहे हैं तो स्वतःही इसके संपर्क में आने





वाला विद्यार्थी आलोकित हो उठेगा । उसके अंदर भी दिव्यता का कण स्पन्दित होने लगेगा । परंतु अगर हम स्वयं कामना –वासना –अंहकार –शंका –भय के धुँ से घिरे हैं तो हमारी संतति ,हमारे सान्निध्य में आनेवाले लोग, विद्यार्थी सभी पर एक धूमिल छाया का प्रभाव पड़ेगा । चाहे हम शब्दों की और अध्यात्म- शास्त्रों की कितनी भी व्याख्या क्यों न कर लें । क्योंकि जगत का यह विधान है कि बाहर का संसार हमारे अंदर के सत्य को किसी न किसी रूप में प्रगट करता है ।बाहर की परिस्थिति हमारे अंतर –सत्य की प्रतीकमय उपज और हमारी अंतरावस्था का प्रतिबिम्ब है ।

इस व्यावहारिक रूप की तीसरी प्रणाली होगी विद्यार्थी के हृदय में मूल प्रश्नों को जगाना । मूल प्रश्न जीवन के स्रोत की तरफ संकेत देते हैं , जैसे , - मैं कौन हूँ ? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ? पृथ्वी क्यों है, इसका लक्ष्य क्या है ? मृत्यु क्यों आवश्यक है ? ज्ञान की सीमा कहाँ है ? प्रेम का अन्त क्यों होता है ? प्राण अशक्त क्यों है ? शरीर अक्षम क्यों है ? इत्यादि , इत्यादि । विद्यार्थी में इन मूल प्रश्नों को उठाना और उसे इसका उत्तर विद्या के माध्यम से, विषय के माध्यम ढूँढने में सहयोग देना, यही है आध्यापिक शिक्षा की एक प्रमुख प्रक्रिया । इसमें शिक्षक का स्थान एक अध्यापक से कहीं अधिक एक सहयोग का है , एक ऐसा सहयोग जो स्वयं बालक की तरह ईश्वर के नित नवीन रूपों के दर्शन का उत्सुक है । सर्वत्र इस ब्रह्म चेतना का स्पर्श अनुभव करना और विद्यार्थी को इस दर्शन के प्रति जागरूक करना, यह है आध्यात्मिक शिक्षा का बाह्य रूप ।

इतना ही नहीं उसके अंदर सत्यनिष्ठा का भाव जगाना , पूर्णता की अभीप्सा को मूर्तरूप देना , मिथ्यात्व के प्रति सतर्क करना ताकि वह अन्धकार व प्रकाश में भेद कर सके । क्योंकि इस परा – विद्या का एक और महामन्त्र है , - है 'सत्यमेव जयते',- सत्य की विजय हो । सत्य मात्र एक मन की उत्सुकता या खोज का विषय नहीं है । सत्य सर्वगीण है और हमारे जीवन , हमारे प्राण , हमारी भावनाओं , सारी पृथ्वी पर इसका साम्राज्य स्थापित होना है । माता जी कहती हैं कि तीन बातें बालकों को सदा याद रहनी चाहिए,-

पूर्ण सत्यनिष्ठा की आवश्यकता ।  
सत्य की अतिम विजय होती है , ऐसा अटूट विश्वास ।  
सतत प्रगति की सम्भावना और उसे करने का संकल्प ।

अगर हम स्वयं को भगवती माँ की कृपा के प्रति खोल सकें तो उनकी विजय –वाहिनी , उनके विजय-ध्वज की शरण में हम अवश्य ही इस अतर्द्धन्द्व पर ईश्वर की विजय का प्रतीक बन सकते हैं । इसी में है हमारी सार्थकता और शिक्षा की सफलता । इसी में है राष्ट्र -चेतना का उत्थान और व्याधित , अव्यवस्थित , रोगग्रस्त समाज का नव –निर्माण ।

“अभी मैं इतना ही कह सकता हूँ कि पूर्ण ज्ञान ,पूर्ण कर्म और पूर्ण भक्ति के सामंजस्य और ऐक्य को मानसिक भूमि से ऊपर उठा कर मन के परे विज्ञान भूमि में पूर्ण सिद्ध करना है इसका मूल तत्व । पुराने योगों का दोष यह था कि वे मन-बुद्धि को जानते और आत्मा को जानते; मन के अंदर आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर संतुष्ट रहते ,किंतु मन खंड को ही आयत्त कर सकता है । अनंत अखंड को संपूर्ण रूप से नहीं ग्रहण कर सकता । उसे ग्रहण करने के लिए समाधि मोक्ष निर्वाण इत्यादि ही मन के उपाय हैं ,और कोई उपाय नहीं । इस लक्ष्यहीन मोक्ष को कुछ आदमी प्राप्त जरूर कर सकते हैं ,किंतु उससे क्या लाभ? ब्रह्म, आत्मा ,भगवान तो हैं ही, भगवान मनुष्य के अंदर जो कुछ चाहते हैं , वह है उन्हें यहां मूर्तिमान करना , व्यष्टि में, समष्टि में,- जीवन के क्षेत्र में भगवान को अभिव्यक्त करना(to realise God in life) “

- श्री अरविंद





## आह्वान उसी का पाता हूँ

आह्वान उसी का पाता हूँ  
 मन की आँख से देवता हूँ,  
 सबको उसी में पाता हूँ,  
 जिधर भी दृष्टि गड़ाता हूँ,  
 विस्तार उसी का पाता हूँ ।  
 चाँद की शीत रश्मियों में  
 सौन्दर्य उसी का पाता हूँ,  
 सूरज की तीव्र तपन में  
 स्वाद मीठा उसी का पाता हूँ ।  
 साँसों की नम आर्द्रता में,  
 जीवन-वाष्प उसी का पाता हूँ,  
 दिल की धड़कनों में,  
 संगीत उसी का पाता हूँ ।  
 तन गया वितान अतिमानव का,  
 छाया उसी की पाता हूँ,  
 गर्जन - तर्जन - घन में -  
 जीवन धार उसी में पाता हूँ ।  
 कहेंगे पागल मुझे,  
 रूमनियत का मेरा विश्व,  
 सिसकती आवाजों में,  
 आह्वान उसी का पाता हूँ ।  
 जब तक दृष्टि मेरी है,  
 "मैं" में भी उसी का पाता हूँ,  
 टूटा घेरा उसका तो -  
 "मैं" में मैं को ही पाता हूँ ।

- बाबूलाल श्रीमयंक





## कला व योग

भारतीय संस्कृति की महत्ता है उसके जीवन की समग्रता एवं एकात्मता में रहकर विकसित होना । ककला/कला/यह कला अपने विभिन्न रूपों, काल व स्थान की विसंगति होने के बावजूद कभी जीवन से विलग न रही । कला ने जहाँ जीवन-गंगा का विर्सजन किया वहीं इसका हास हुआ, पतन हुआ एवं व्यक्ति व समाज को/की अखण्डता पर भी उसका प्रभाव पड़ा । अपनी मानसिक व आध्यात्मिक चेतना के आरोहण के साथ कलाकार ने अपनी कली/कला को जोड़ा और इसमें जीवन-योग, कर्मयोग, ज्ञान योग, भक्तियोग का समन्वय हुआ । इस अनन्त चेतना से जुड़कर ही भारतीय कला ने अपने रूपों को अनन्त रूपों में व्यक्त करने का सामर्थ्य सँजोया । यूँ कला जीवनानन्द एवं प्रभु-प्राप्ति का माध्यम रही ।

श्रीअरविन्द आश्रम – दिल्ली शाखा, के कलाकार ‘मंगल’ इसी भारतीय संस्कृति का नेतृत्व करते हैं: आश्रम-जीवन एवं प्रभु-अभीप्सा को कला से जोड़कर । श्रीअरविन्द की विशाल प्रतिमा को यहाँ आश्रम प्रांगण में स्थापित करने के पश्चात् ‘मंगल’ ने चाचाजी ‘श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर’ की प्रतिमा-स्थापना को अपना साधना स्रोत चुना । चाचाजी ने अपने जीवनकाल में न जाने कितने लोगों को उत्साह, प्रसन्नता एवं स्वतंत्र जीवन का मार्ग दिखाया । कुछ तो उनके दर्शन मात्र से ही कृतार्थ हो जाते थे । ‘मंगल’ ने उस पावन प्रेरणा-पुंज को आमूर्त्त रूप देकर न केवल स्वयं को धन्य किया है वरन् वे सभी जो चाचाजी के सम्पर्क से प्रेरित हुए हैं, अब उनके प्रतिदिन दर्शन कर पायेंगे । ‘मंगल’ इस सराहनीय कार्य के लिए साधुवाद के पात्र हैं ।

श्री अरविन्द ने आध्यात्मिकता को भारतीय जीवन् , भारतीय-संस्कृति, भारतीय कला आदि का आधार बनाया और कहा कि यही भारतीय आदर्श उसे संसार की सभी संस्कृतियों से ऊपर उठाये है । श्रीअरविन्द चिन्तित थे चूँकि पाश्चात्य जीवन से प्रभावित हो हमारे कलाकार उथले व भ्रमित मानसिक स्तर पर सृजन करने लगे थे जो जीवन की समग्रता को छिन्न-भिन्न करने लगी थी । श्रीअरविन्द ने हालाँकि उसे भी एक प्रकार की उन्नति ही समझा था परन्तु उनका स्वप्न था कि एक दिन सारे विश्व में कला आध्यात्मिक साधना का माध्यम बनेगी और वह दिन विश्व-बन्धुता का दिन होगा ।

मंगल इसी भावी कला के रूप को वर्तमान में जी रहे हैं । आनेवाला समय उन्हें और भी प्रभु व कला के निकट लाये ऐसी हमारी प्रार्थना है । भारतीय कलाकार के बारे में श्रीअरविन्द ने कहा है :

“ भारतीय कलाकार जीवन और आत्मा को जोड़ने वाले अनुभव सम्बन्धी मूल्यों के मापदण्ड के दूसरे छोर से आरम्भ करता है । यहाँ समस्त सर्जन-शक्ति आध्यात्मिक एवं आन्तरात्मिक दृष्टि से प्राप्त होती है, भौतिक दृष्टि का दबाव गौण होता है और उसे सदा जानबूझकर हलका कर दिया जाता है ताकि एक अत्यंत प्रबल कोटि की आध्यात्मिक एवं आन्तरात्मिक छाप डाल दी जा सके, और ऐसी हरेक चीज को दबा दिया जाये जो इस उद्देश्य को सिद्ध नहीं करती या जो मन को इस उद्देश्य की पवित्रता से विचलित करती है ।”

“आत्मा की अनुभूति ही इसके सृजन की विधि और आत्मा की अनुभूति ही प्रतिक्रिया करने और समझने का हमारा तरीका भी होना चाहिए ।”

-संजय





पुस्तक समीक्षा

“आस्था और चिन्तन का विश्वकोश”

(स्वामी शिवानन्द जन्मशताब्दी – स्मृतिग्रन्थ)

प्रकाशन -शिवानन्द प्रकाशन संस्थान

दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द नगर,

जिला –टिहरी –गढ़वाल, (उ.प्र. )

मूल्य 65 रूपये माल

“वैश्वचेतना आक्समिक घटना अथवा दैवयोग जैसी वस्तु नहीं है । यह तो वह शिखर है जहाँ कण्टकाकीर्ण तथा फिसलनेवाले मार्ग के द्वारा पहुँचा जा सकता है । इस दुर्गम मार्ग की प्रत्येक सीढ़ी पर कदम रखते हुए मैं चढ़ा हूँ । प्रत्येक सीढ़ी पर मुझे अगली सीढ़ी पर चढ़ने के लिए आगे की ओर बढ़ा रहे है।”/ प्रत्येक सीढ़ी मुझे अगली सीढ़ी पर चढ़ने के लिए आगे की ओर बढ़ा रही है ।

प्रभुकृपा का जीवन में होना निरन्तर साधना का प्रसाद है, आकस्मिक घटना नहीं, स्वामी शिवानन्द के ये शब्द साधकों को उनके जीवन-योग का सत्य बताते हैं और साथ ही यह भी कि हमें जीवन का प्रत्येक क्षण प्रभु के प्रति अभीप्सामय बनाना होगा । समग्रयोगी स्वामी शिवानन्द ने श्रीअरविन्द की भाँति ही इस धरती पर प्रभुचेतना के अवतरण को प्रकृति व मानवीय-सृष्टि का उद्देश्य माना । हालाँकि इस उद्देश्य की अभिव्यक्त उन्होंने स्वयं अपने अनुभूतित सत्य को आधार बनाकर की । उन्होने देखा कि आध्यात्मिक क्रमविकास में कोई भी साधना व्यर्थ नहीं गई, एक साधना दूसरे में संलीन होकर प्रकट हुई समन्वय योग रूप में : हाथ काम के लिए , मन भगवान के लिए ; व्यष्टि-समष्टि में उसी एक अनुस्यूत meaning not clear सत्ता का उपस्थित होना । ‘सर्व खल्विदं ब्रह्म’ उसी का बोलना, उसी का सुनना, उसी का होना , परमसत्ता का ऐसा अनुभव हुआ स्वामी शिवानन्द को जब ईश्वर उनके जीवन में आये ।

स्वामी “ शिवानन्द की जन्मशताब्दी-वर्ष (1987) पर प्रकाशित “स्वामी शिवानन्द जन्मशताब्दी-स्मृतिग्रंथ” धर्म, दर्शन और तत्त्वचिन्तन का विश्वकोश है । इस ग्रंथ में देश के महत्वपूर्ण विद्वानों, दार्शनिकों और शोधकर्ताओं ने स्वामीजी के जीवन और आराधना के विविध पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की है । इस ग्रंथ के सम्बन्ध में प्रकाशकीय वक्तव्य में ठीक ही कहा गया है कि “ इस स्मृतिग्रन्थ में माल प्रशंसात्मक सामग्री ही नहीं है । इसमें कुछ ऐसी भी सामग्री है जिसे पाठक संजोकर रखना चाहेंगे । इसे पढ़कर पाठक साधना-मार्ग पर आगे बढ़ना सीखेंगे, भारत की गौरवमयी संस्कृति के विभिन्न पक्षों से परिचित होंगे तथा विश्व के समस्त प्रमुख धर्मों के दार्शनिक विचारों, धर्मग्रन्थों एवं धर्म प्रवर्तकों का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करेंगे ।”

ग्रंथ के आरम्भिक सोपान में स्वामीजी की बाल्यावस्था, उनकी प्रतिभा तथा डॉक्टर के रूप में रोगियों की सेवा आदि के माध्यम से उनके संस्कारों के निर्माण पर प्रकाश डाला है । श्रीमती प्रकाश अग्रवाल ने उनके व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन-दर्शन सम्बन्धी दो लेखों में स्वामीजी के जीवन की संक्षिप्त जीवन-झाँकी सफल ढंग से प्रस्तुत की है । लेखिका ने स्वामीजी के पुरखों से आरम्भ कर उनके दार्शनिक कृतित्व आदि का अपने लेखों में स्पष्ट एवं आकर्षण वर्णन किया है । “बालक कृष्ण स्वामी बचपन से ही बड़े मेधावी और कुशाग्र बुद्धि के थे । उनमें अपने साथियों के लिए अपार स्नेह था और गरीबों के लिए अत्यधिक दयाशीलता थी । वह क्षुधितों को भोजन और असहायी की सेवा करने में रुचि रखते थे।” लगता है उपर्युक्त कारणों से ही उन्होंने डॉक्टरी का पेशा चुना । डॉक्टर बनने के बाद वे मलाया चले गये और वहाँ रोगियों की तन-मन-धन से सेवा की । उनके डॉक्टर के स्वरूप को लेखिका ने इन शब्दों में व्यक्त किया है : “वे डॉक्टर थे – एक सहृदय, संवेदनशील ,परपीड़ा से द्रवित होनेवाले जन्मजात संस्कारों से युक्त डॉक्टर ! डॉक्टर होने के





नाते उन्होंने मानव की रुग्ण मानसिकता से प्रभावित हो मानव के समस्त स्तरों की व्यथा, वेदना और पीड़ा को निकट से देखा, जाना और अनुभव किया था । स्वामी शिवानन्द को भागवद्-पुरुष और आध्योमंचितक के रूप में चित्रित करते समय उपर्युक्त वक्तव्य आया है जो प्रथम सोपान के प्रथम भाग में है । इस प्रथम सोपान में पाँच मुख्य अध्याय हैं जिसमें स्वामीजी के प्रति श्रद्धा सुमन, दिव्य-जीवन साधना में उनकी गतिविधियों और उनके दुर्लभ चित्रों के माध्यम से जीवन-झाँकी प्रस्तुत की गई है । इसके अतिरिक्त उनकी जीवनी, उनका व्यक्तित्व और कृतित्व तथा जीवन-दर्शन सम्बन्धी कई लेख संकलित हैं ।

ग्रन्थ का द्वितीय सोपान पाठकों के लिए बहुमूल्य निधि है, जिसमें विश्व के सभी प्रमुख धर्मों सम्प्रदायों एवं धार्मिक आन्दोलनों आदि पर लेख है । इसके अतिरिक्त दुनियाभर के धर्मप्रवर्तकों आदि पर लेख हैं । भारत की विविध साधना-प्रणालियों एवं विभिन्न मत-मतान्तरों पर भी पुस्तक के विभिन्न लेखों में प्रकाश डाला गया है । हिन्दु धर्म , इस्लाम धर्म तथा ऊशाई धर्मों पर अलग-अलग लेख हैं । इसके अतिरिक्त विभिन्न दार्शनिकों , धार्मिक आन्दोलनों के अगुवा तथा सामाज -सुधार आन्दोलनों के महा पुरुषों के कार्यों पर चर्चा की गई है । धर्मप्रवर्तकों में बुद्ध , महावीर , कबीर , मुहम्मद , ज़रथुस्त्र , ईसामसीह , चैतन्य रामकृष्ण परमहंस तथा श्रीअरविन्द आदि पर अलग-अलग लेख है जिनमें उनकी साधनाप्रणालियों पर सक्षिप्त विचार किया गया है । ये लेख इस ग्रन्थ के विशिष्ट आर्कषण है तथा अन्य धर्मों के प्रति स्वामी शिवानन्द की उदार दृष्टि के प्रतीक है । विश्व -धर्म -दर्शन' अध्याय के भाग दो का आरम्भ ही स्वामीजी के “अनेक धर्मः एक धर्म” शीर्षक लेख से किया गया है । इस लेख में कहीं भी किसी धर्म के प्रति पूर्वाग्रह नहीं है , बल्कि सभी धर्मों का लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति ही बतलाया गया है । स्वामीजी के शब्दों में : “यदि आप विश्वास के धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि प्रत्येक नये धर्म का सम्बन्ध किसी पुराने धर्म से है और पुराने धर्मों का सम्बन्ध उनसे भी अधिक पुराने धर्मों से है और इन सब धर्मों का प्राचीनतम स्त्रोत है ‘ मानवता का धर्म’ ।समस्त धर्मों के मूले-सारतत्त्व उसने ही पुराने है जितनी कि मानवजाति ।” यह धर्म की आधुनिक व्याख्या है और “वसुदेव कुटम्बक” इसका लक्ष्य : सम्पादक ने बखूबी एवं कौशल के साथ स्वामीजी के विचारों के अनुरूप यहाँ विविध धर्मों एवं धार्मिक आन्दोलन पर आधिकारिक लेखकों के लेख संग्रहित किये हैं ।

तात्त्विक -चिन्तन ,धर्म और आचार , कला और सस्कृति ,साहित्य और प्राच्य विद्या पर इस ग्रन्थ में विभिन्न विद्वानों के लेख है । धार्मिक समन्वय ,आधुनिक धार्मिक एकता के परिप्रेक्ष्य में स्वयं स्वामीजी का लेख अन्तिम है । स्वामी शिवानन्देजी जैसे सन्त, दार्शनिक और महर्षि के प्रति उनकी यह जन्म - शताब्दी-स्मृतिग्रन्थ सर्वाधिक उपयुक्त श्रद्धांजलि है ।

पुस्तक समीक्षा

सावित्री -सौरभ : सावित्री चेतना का प्रतीक

लेखक -शिवदास ,

प्रकाशक -सिद्धलोक प्रकाशन ,

43श्रीअरविन्द मार्ग , आर्यनगर देहरादून ,

मूल्य :60रु .मात्र }

श्री शिवदासकृत 'सावित्री -सौरभ' पुस्तक की समीक्षा करना अपने में दुस्साहस ही कहलायेगा । महाकाव्य 'सावित्री' में निहित अतिमानसीय साधना को आत्मीकृत कर मंत्राभूत संस्कृतमय हिन्दी पद्यों का जो सृजन शिवदास जी ने किया है वह न केवल हिन्दी साहित्य के लिए अमूल्य देन है वरन् उन सभी साधकों के लिए जो 'सावित्री' के आस्वादन से आङ्गल भाषा की अनभिज्ञता या उसकी दुरुहता के कारण वंचित रह जाते हैं, एक ईश्वरीय वरदान है ।





‘सावित्री –सौरभ’लेखक की अक्षुण्ण आध्यात्मिक अभीप्सा एवं ‘सावित्री’के योगायोग में स्वयं को समर्पित कर देने का परिणाम है । लेखक की सृजनात्मक प्रक्रिया में लेखन तो बस साधनामाल रहा है प्रेरक तो रहा है प्रतिपल परमचेतना के आरोहण शिवदास जी के ही शब्दों में:

“ सावित्री –सौरभ मेरी साधना का आलम्ब और मेरी चेतना के विकास एवं आरोहण की प्रयोगशाला है जैसे –जैसे इस रचना की प्रगति होती गई मुझको अन्तर्मुख में अधिकाधिक उन्नयन की अनुभूति होती रही है और फिर चेतना के विविध क्रमिक स्तरों से मैंने इसकी पुनरावृत्ति की है । संभवतः यह क्रम भविष्य में भी जीवनपर्यन्त चलता रहेगा ।” कला व साहित्य को योग का माध्यम बनाना एवं चेतना के स्तरों पर ऊर्ध्वगामी होते जाना ही भावी ललित कलाओं का विकसित रूप होगा । ‘भावी कविता’ (The Future poetry ) में श्रीअरविन्द ने कविता का आधार सत् -चेतना (Truth Consciousness )को बताया है । संभवतःइसी चेतना की खोज में शिवदास जी ब्रह्मपुरी तपोवन में गंगा के तट पर रहे ताकि सावित्री के दृश्यों का स्वयं अंतर्दर्शन अभिव्यक्ति कर सकें ।

श्रीअरविन्दकृत ‘सावित्री’ महाकाव्य एक प्रतीकात्मक पौराणिक गाथा है । सत्यवान है दिव्य तत्त्वों से युक्त वो आत्मा जो पृथ्वीजन्य अन्धकार में लिप्त हो गई है ; सावित्री है दिव्य सूर्य पुत्री जो परम चेतना का संदेश ले पृथ्वी पर अवतारित होती है । ‘सावित्री-सौरभ’ में लेखक ने प्रथम सोपान के प्रथम दो स्कन्धों (Cantos) का पद्य –रूपांतर , भावार्थ व भाष्य लिखा है । पहला स्कन्ध (Canto I) है ‘प्रतीकात्मक उषा’ (The Symbol Dawn )एवं दूसरा संकन्ध (Canto II) है ‘समस्या’ The Issue) ।

सावित्री के प्रथम दो स्कन्धों का भाष्य हिन्दी भाषा में प्रथम बार लिखा गया है । पुस्तक को मूलतः तीन भागों में सज्जित किया गया है । विभाग ‘अ’ में लेखक द्वारा रचित शोध –निबंध व अन्य लेख समाहित है । ‘सबकुछ हो सकता सुसिद्ध यदि प्रभु का दिव्य स्पर्श प्राप्त हो’ एवं अन्य ‘सावित्री-सौरभ’ के सिद्ध मंत्रों को चौथे अध्याय में सुयोजित किया गया है । इन सिद्ध मंत्रों का उद्गम लेखक के रचानाक्रम में स्वयं हुआ है और इनकी शक्ति का लेखक की साधना पर बहुत पड़ा है । विभाग ‘ब’ में पद्यों का भाष्य निहित है जो लेखक के स्वयं के अनुभवों व शोध पर आधारित है । इसके अलावा प्रस्तावना , प्राक्कथन , परिशिष्ट –‘अ’ व परिशिष्ट –‘ब’ में जिज्ञासु पाठकों के लिए बहुत सी सामग्री जोड़ी गई है । सम्पूर्ण पुस्तक ही हर प्रकार से उत्तम है । ‘सावित्री’ को समझने में, श्रीअरविन्द के समन्वय –योग के दर्शन एवं उसे जीवनोपयोगी बनाने में ‘सावित्री-सौरभ’ का एक महान योगदान है एवं इसका सभी विद्यालयों, पुस्तकालयों व अन्य सुधिजनों तक प्रचार व प्रसार हो ऐसा हर संभव प्रयत्न करना चाहिये । जैसा कि डॉ. कर्णसिंह ने ‘सावित्री –सौरभ’ के विमोचन दिवस 14 अगस्त 1988 को कहा और जैसा समीक्षकर्ता का मत भी है कि हर अनुवाद के साथ मूल सावित्री के अंग्रेजी अंशों को भी छापने से पाठकगण एक ही पुस्तक में सारी सामग्री पा सकेंगे । शिवदास जी द्वारा विभाग ‘स’ में लिखित भाष्य का भी अंग्रेजी में अनुवाद होना चाहिए ताकि हिन्दी व जाननेवाले ‘सावित्री’ के साधक अंग्रेजी में उसे पढ़कर लाभान्वित हो सकें ।

प्रसतुत पद्यांशों से ‘सावित्री –सौरभ’ का सौरभ स्वयं विभासित हो जाता है :

आरपार आकाश –तत्त्व की व्यर्थ विपुल निश्चेतना के , बिना प्राण –मन निराकारवत् संज्ञाहीन सचेतना के ; आत्महीन स्वप्न में उसमें एक बार फिर फलटा खाया; इस प्रकार पोले भँवरों में घूम रही थी धरा व्यथित सी, वेसुधसी निज आत्मशक्ति औ’ स्वीय नियतसे, परिवर्जित सी ; व्योम रिक्त से उदासीन थे अचल स्तब्धता के प्रसार में; उसी समय गतिशील हुआ कुछ उस आगाध घन अन्धकार में ।



धरा के तिमिर - चक्र का छोर ।  
हुआ चिति - आकांक्षा का भोर ॥

ज्योति - रश्मि ने अंतरिक्ष में गत गवाक्ष- सम दीप्त कोण से वशिक वस्तुओं को झलकाया अवरोहण कर व्याप्त व्योम से ; बाध्य किया जग की अन्धी व्यापकता को अवलोकन करने , अन्धकार हो गया विफल पातित चीवर सम सरकने एक अधोनत देव - देह से ; पीत छिद्र सम तत् गवाक्ष से , यत् निमित्त था मुक्त - स्ताव के अप्रशस्त रविकर कटाक्ष के , दिव्य - शक्ति - अभिव्यक्ति ज्वालका समुद् भेद संवेग प्रस्लावित ; ऊर्ध्व अल्पकालीन पुरातन दिव्य - चिह्न था पुनरावर्तित ।

धरा पर चैत्य भाव अवतार ।  
विवर्तन हित चिति का व्यापार ॥

श्रीअरविन्द आश्रम ,दिल्ली शाखा में यह प्रयास चल रहा है कि 'सावित्री - सौरभ' के पद्यों को संगीतबद्ध कर कैसेट के रूप में निकालें ताकि श्रद्धालु पाठक उनके श्रवण का आनन्द ले सकें ।

-संजय

### इस योग की मांग

“इस योग की मांग है कि भागवत सत्य का आविष्कार करने और उसे मूर्तिमान करने की अभीप्सा में इस जीवन का पूर्ण रूप से उत्सर्ग कर दिया जाए ,अन्य किसी भी काम के लिए नहीं ,वह चाहे कुछ भी क्यों ना हो । तुम अपने जीवन को एक तरफ भगवान और दूसरी तरफ कोई संसारी लक्ष्य तथा कार्य, जिसका भागवत सत्य के अन्वेषण से कोई संबंध नहीं, इन दोनों के बीच बांट दो यह इस योग में नहीं चलेगा।इस तरह की कोई साधारण-सी बात भी योग की सफलता को असंभव बना देगी । तुमको अपने अंतः में प्रवेश करना होगा और आध्यात्मिक जीवन पर पूर्ण रूप से उत्सर्ग होना आरंभ करना होगा । यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम इस योग में सफलता लाभ करो, तो तुम्हें मन की अभिरुचियों के साथ किसी भी तरह का लगाव नहीं रखना होगा, प्राण गत आकांक्षाओं स्वार्थों और आसक्तियों के हठ को अलग कर देना होगा तथा परिवार बंधु वर्ग और देश के साथ किसी भी प्रकार के अहं-वासनायुत लगाव को दूर कर देना होगा । तुम्हारी बाह्य शक्ति या क्रिया के रूप में भी जो कुछ आना है उसे भी सत्य से ही आना होगा जो एक बार आवेश कृत हो चुका है ना की निम्नतर मनोगत या प्राणगत वासनाओं से, उसे भागवत संकल्प से आना होगा, न कि व्यष्टिगत पसंद या अहंकार की अभिरुचियों से ।”

-श्री अरविंद





## कैसे आऊँ जमुना के तीर

नीलाभ स्मृति में डूबे  
मेरे स्वप्न  
तुम्हारे पदचापों की आहट से  
टूट गये .....

नयन  
मोहकता के संभ्रम से टूट  
अभीप्सामय, जीवन्त  
दीप -स्तम्भ बन गये ।  
पर कैसे हुआ कि  
बाँसों के झुरमुट  
कदम्ब बन

और जमुना तट से  
बाँसुरी के स्वरों ने  
मुझे जाना  
खोजा

रिझाया !  
क्यों हुआ कि

आकाशीय अस्पष्टता में भी आश्वासन मिला आस्था बँधी ?  
कोई भी अन्तर तो नहीं  
अपने रूप में  
तुम्हें रूपायित करना  
या

तुम्हारे रूपातीत रूप में  
संलीन हो जाना  
फिर विवशता कैसी ?  
सुप्त -तत्वों ने  
अन्तर्मुख हो

अपनी सम्भावी प्रखर चेतना को देखा  
समझा

इतना सरल नहीं  
सहज हो जाना  
सरगम हो जाना  
सरगम बन जाना !  
कैसी विडम्बना है प्रभु  
कैसी असमर्थता  
जमुना तट से  
तुम्हारा

निरन्तर आमंलण .....आश्वासन  
और मैं  
निरीह ..... कातर !

-संजय





## भागवत प्रेम

भागवत प्रेम में ही रूपांतर करने की शक्ति है। उसे जो यह शक्ति प्राप्त है इसका कारण यह है कि उसने रूपांतर का कार्य सिद्ध करने के लिए अपने आपको जगत् के हवाले कर दिया है और यहाँ वह सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा है। केवल मनुष्य के अन्दर ही नहीं बल्कि जड़त्व के समस्त अणु-परमाणु तक में वह प्रविष्ट हो रहा है जिसमें कि वह जगत् को फिर से उसके मूल दिव्य सत्य तक वापस ले आ सके। जैसे ही तुम उसकी ओर उन्मुक्त होते हो वैसे ही तुम उसकी रूपांतरकारिणी शक्ति को भी ग्रहण करते हो। परन्तु उसकी नाप-तोल तुम किसी परिमाण के रूप में नहीं कर सकते – मूल बात है बस सच्चा संस्पर्श स्थापित करना; क्योंकि तुम देखोगे कि उसके साथ सच्चा संस्पर्श करना ही अपनी सारी सत्ता को उससे तुरंत भर लेने के लिए पर्याप्त है।

-श्रीमाँ

## नियति और पुरुषार्थ

- जे.पी. सिंह

जबसे अति मानव का अवतरण हुआ है; 29 फरवरी 1956 को, तब से नियति के बारे में अवधारणा थोड़ी सी बदलती रही और आगे भी बदलेगी। आमतौर से हम लोग नियति का भाव यही लेते हैं कि जो हमने पहले से कर्म किए हैं उसका जो परिणाम हुआ है उसने जो परिस्थिति पैदा की है उसको हम भाग्य या नियति कहते हैं। थोड़ा सा वेदांतिक दृष्टि से इसका हम विश्लेषण करें तो वास्तव में हमारे कर्म मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं। एक संचित कर्म होते हैं दूसरे प्रारब्ध कर्म होते हैं और तीसरे आगामी कर्म होते हैं। आज हम जिस नियति की बात कर रहे हैं वह वास्तव में प्रारब्ध कर्म है। जब हम कर्म की बात करते हैं तो हमेशा इसका ध्यान रखना चाहिए कि जो बाह्य रूप में हमारा कर्म दिखाई पड़ रहा है कर्म वही नहीं है जो कर्म परिणाम देने कि अवस्था में आ जाते हैं तो उन्हें प्रारब्ध कर्म कहते हैं। उदाहरण के लिए अगर कर्मों का एक तरह से मानवी करण करके एक पिंजरे में बंद कर दिया जाए तो जो कर्म पिंजरे से बाहर निकलने की अवस्था में होते हैं और निकलने लगते हैं उन्हीं को प्रारब्ध कर्म कहते हैं। हमारे शास्त्रों में इसको बहुत अच्छी तरह से समझाया गया है। जिसे हम सब साधारण बुद्धिजीवी लोग इस तरह समझ सकते हैं। प्रारब्ध कर्म को हम नियति से ले रहे हैं और नियति सबकी अलग-अलग होती है। मेरे कर्म मेरे हिसाब से फल देते हैं और आप के कर्म आपके हिसाब से। अर्थात् कर्म परिस्थिति पैदा करते हैं इसमें कोई विकल्प नहीं है लेकिन यह ध्यान रहे कर्म के साथ-साथ बहुत सारी शक्तियाँ भी होती हैं कुछ सहयोगी शक्तियाँ होती हैं और कुछ विपरीत शक्तियाँ होती हैं जो हमारे कर्म को प्रभावित करती हैं। जिसको हम जानते नहीं हैं इन सबको मिलाकर कर्म बनता है और कर्म एक परिस्थिति देता है।

अब हम थोड़ा इस पर ध्यान दें कि जीवन से हम केवल यह समझते हैं कि हम पैदा हुए और हमारा शरीर छूटा। इन दोनों के बीच के अंतराल को हम जीवन कहते हैं। ऐसा नहीं है जीवन वास्तव में अनुभवों की एक श्रृंखला है यह पारिभाषिक शब्द है। जीवन इसके पहले भी था जीवन इसके बाद में भी रहेगा पर यह बीच में जन्म और मृत्यु जिसे हम कहते हैं दो स्टेशन हैं और इन दो स्टेशनों के बीच में जो हम कर्म करते हैं हमारे आगे आने वाले समय के लिए संचित परिस्थितियाँ पैदा होती हैं जो परिणाम देती हैं वह नियति है। लेकिन जो यह नियति होती है प्रारब्ध होता है वह विशेष चेतना के स्तर पर होता है। अगर हम इससे ऊपर उठ गए तो जिसे हम नियति कह रहे हैं वह बदल जाती है इसीलिए इसको हम लोग मन से निकाल दें कि जो हमने कर्म किया है उसका परिणाम हमें मिलना ही है। परिणाम होता है लेकिन अगर हमने साधना की है और योग के परिणाम स्वरूप अपनी चेतना को ऊपर उठा लिया है तो हमारे





लिए वह नियति बदल जाती है। जैसा कि हम कहते हैं कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है अंशतः सही है। फिर देखते हैं कि हमारे भाग्य में जो लिखा होता है वही होता है यह भी सत्य है लेकिन पूर्ण सत्य नहीं है यह सापेक्ष है। इस भाव को हमें समझना चाहिए। कई लोग यह कहते हैं कि हमारी हथेलियों में जो लिखा है वही हमारा भाग्य है। अंशतः सही है। श्रीमां के लिए कहा जाता है कि जब उन्होंने योग अभ्यास प्रारंभ किया था तो उनके हाथ की लकीरें सब खत्म हो गई थीए कालांतर में उनके हाथ में दूसरी लकीरें बन गई। जो ज्योतिष के ज्ञाता हैं वह बताते हैं कि नियति बदलती रहती है यह हमारी स्वतंत्र इच्छा पर भी निर्भर करती है।

हम बहुत सी नियतियोंकी पकड़ में रहते हैं। भौतिक स्तर पर हम सामान्यतः मां.बाप द्वारा जो निर्मित होता है उसकी नियति में होते हैं। परिवेश एवं स्वयं पर कम निर्भरता रहती है। अगर प्राणिक स्तर पर हम देखे तो स्वयं पर निर्भर करती है। माता.पिता और परिवेश पर कम निर्भर करती है और मन के स्तर पर जब देखते हैं तो आप पर ही मुख्य रूप से निर्भर होती है। माता और पिता पर कम निर्भरता होती है। इस तरह हर स्तर पर हमारी अलग अलग नियतियां होती हैं। लेकिन नियति हमारे पूर्व जन्मों के परिणाम के स्वरूप होती है। लेकिन आगे हम इनका कैसे सामना करते हैं यह आपके हमारे पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। 'साविली' जो विश्व का अंग्रेजी का एक सबसे बड़ा महाकाव्य है जिसमें साविली देवी आत्मा है जो मानवीय रूप में अश्वपति की पुत्री के रूप में पैदा हुई है और वह इतनी गुणी है इतनी सुंदर है कि कोई पुरुष उससे आसानी से विवाह करने के लिए तैयार नहीं होता है। लेकिन अश्वपति को ऊपर से एक आदेश मिलता है कि आप इसका निर्णय साविली को करने दीजिए। अश्वपति उसकी सारी व्यवस्थाएँ करते हैं साविली को रथ में बैठा कर उसे वर ढूंढने के लिए भेजते हैं।

जंगल में पहुंचकर साविली की मुलाकात सत्यवान से होती है जो राजा द्युमत्सेन के पुत्र थे। सत्यवान एक दिव्य आत्मा को अपने अंदर छुपाये हुए थे। साविली और सत्यवान दोनों एक दूसरे को पहचानते हैं साविली ने कहा ये वही हैं जिन्हें हम चाहते हैं वहां उनका गंधर्व विवाह होता है एतत्पश्चात् साविली वापस घर लौटती है। तभी वहां पर देवर्षि नारद पहुंचते हैं और साविली को देखते हैं। उन्होंने देखा कि साविली के साथ कुछ गड़बड़ है। थोड़ा कुछ अनिष्ट की बात करते हैं और ऐसे ही चुप हो जाते हैं। साविली ने जो अपना निर्णय लिया था गंधर्व विवाह का उनको बताती हैं जैसे ही साविलीने सत्यवान का नाम लिया उसके पिता जो भौतिक शक्ति के साथ आध्यात्मिक ऊर्जा से संपन्न धनीव्यक्ति थे उन्होंने अंतर्मन से देखा। उन्हें सत्यवान पर एक काली छाया दिखाई दी लेकिन वे छाया का पीछा करते हुए जब गये तो उन्हें छाया के चारों ओर एक चमकीला प्रकाश का घेरा भी दिखाई दिया। तो अश्वपति ने साविली से कहा कि जो तुमने निर्णय लिया है वह ठीक है। लेकिन उसके आगे भी जो हो रहा है वह भी ठीक होगा। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नियति और पुरुषार्थ के संदर्भ में काली छाया उसकी नियति है। यानी कि वह एक विपरीत परिस्थिति है। जिसका वह सामना करने वाली है। परिस्थिति का कैसे सामना करे जो उसका पुरुषार्थ है जो वह चमकीले प्रकाश के रूप में उसका पीछा कर रहा है। साविलीएमाता.पिता और नारदजी के बीच कुछ समय तक वार्ता होती है। साविली की माता को पता चलता है कि उसकी पुत्री के साथ कुछ अनिष्ट होने वाला है। तो वह साविली से कहती है कि अपना निर्णय बदल दो क्योंकि नारद जी ने बताया कि सत्यवान की बारह महीने बाद मृत्यु निश्चित है। लेकिन नारदजी ने उन्हें समझाया और उन्होंने पुरुषार्थ की बात कही।

साविली वह शक्ति है जो परिस्थितियों का सामना कर लेगी और उसका जन्म ही इस विशेष परिस्थिति का सामना करने के लिए हुआ है। इस तरह के नए वातावरण और नवयुग की स्थापना करने के लिए ही उनका जन्म हुआ है। पुरुषार्थ अच्छी चीज है लेकिन पुरुषार्थ के लिए परिश्रम करना पड़ता है एतप करना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। साविली की इच्छाशक्ति बड़ी प्रबल है। समर्पण, समर्पण और समर्पण। जब साविली को लगता है कि सत्यवान की मृत्यु होने वाली है तो साविली अपने ससुराल जाती है वहां वह दुविधा के दिन बिताती है एक.एक दिन पति की मृत्यु का निकट आता जा रहा है। सत्यवान के जीवन का एक.एक दिन कम होता है वह जानती है। शादी के बाद वह कभी





जंगल नहीं गईए लेकिन सत्यवान के आखिरी दिन वह सत्यवान के साथ जंगल जाती है। उसने वहां जाकर देखा कि निश्चित समय पर सत्यवान की मृत्यु हुई। मृत्यु के देवता वहां आयेए साविली और मृत्यु के देवता का संवाद होता हैए जिसमें साविली मृत्यु के देवता से काफी वार्ता करती है और केवल और केवल सत्यवान को ही मांगती है। मुझे केवल सत्यवान चाहिए और कुछ भी नहीं। अंत में मृत्यु के देवता सत्यवान को जीवित करते हैं। सत्यवान के जीवित होने पर उसके माता.पिताको उनका राज्य वापस मिल जाता है। उनकी आंखों की रोशनी वापस आ जाती है। यह मृत्यु पर विजय एक नई ऊषा की तैयारी है जो साविली ने अपने पुरुषार्थ के बल पर प्राप्त की थी। नियति में उसके विपरीत परिस्थितियां थीं। लेकिन पुरुषार्थ से उसने इन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की। दूसरी चीज साविली में कहा गया है भगवान का संकल्प। जो भाग्य है वह ईश्वर का संकल्प भी हैए हम उसे पहचानते नहीं हैंए लेकिन जब हम धीरे.धीरे उस परमात्मा को समर्पित होते चले जाते हैं तो उस समर्पण की वजह से हम उस ऊंचाई पर पहुंच जाते हैं जहां हम वास्तविकता को देखते हैं। तो हमें अनुभव होता है कि पहले नियति एक भयंकरता का भाव लिए हुई थी वह भयंकरता खत्म हो जाती है क्योंकि वह भी हमारे लिए एक बहुत बड़ी अवस्था थी जिससे गुजरकर हमारी आत्मा का विकास होता है।

श्रीमद्भागवत में अजामिल की एक कथा आती है अजामिल नाम का एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण था। पूर्व जन्म में उसने अच्छे कर्म किए थेए लेकिन इस जन्म में उसकी आदतें कुछ बुरी हो गई थी। वह इस जन्म में बहुत राक्षसी प्रवृत्ति का हो गया था लोगों को बहुत परेशान करने लगा था। दुष्कर्म करने लगा था। एक बार उसके गाँव में कुछ साधु आये और उन्होंने गांव वालों से पूछा कि शाम हो गई है हम यहां रुकना चाहते हैं। तो गांव वालों ने एक व्यंग्यात्मक तरीके से कहा कि इस गांव के बाहर एक ब्राह्मण रहता हैए वहां जाकर उसके यहां रह सकते हैं। वो सब साधु वहां गये उस समय अजामिल घर पर नहीं था। उसकी पत्नी ने उनकी सेवा की। अजामिल के एक छोटा बच्चा था जिसका अभी नामकरण नहीं हुआ था तो साधुओं ने उसका नाम नारायण रख दिया। 80 वर्ष की अवस्था में जब अजामिल का अंतिम समय आया तो मृत्यु के दूत उसके सामने उसके जीवन का सारा लेखा.जोखा लेकर आये। चित्रगुप्त ने उन्हें उनके कर्म बतायेए तो वह बड़ा भयभीत हुआ और उसने भय में नारायण नारायण पुकारा। नारायण यानी बच्चे को पुकारा या भगवान को पुकाराए यह लीला उसे ही पता। जैसे ही उसने नारायण को पुकारा तो भगवान विष्णु के दूत वहां आ गयेए उन्होंने यम के दूतों से संवाद करके कहा कि आप इसे नहीं ले जा सकते क्योंकि इसने प्रायश्चित्त कर लिया है। इसने अपनी नियति बदल दी है। उन्होंने कहा कि यह कैसे हो सकता हैघ् इसे क्या मालूम ? यह दुष्कर्मी है। विष्णु के दूत ने कहा नहीं.नहीं इसने नारायण का नाम लिया है।

इसीलिए इस पर सामान्य धर्म नहीं चलेगा। सामान्य धर्म वही होता है जब जिसकी मृत्यु का समय आ जाता है तब उसे जाना होता है लेकिन विशेष परिस्थिति में मौत का समय टाला जा सकता है। श्रीमां ने भी कहा है कि हम यह न मान ले की आज हमारी मौत हैए तो निश्चित ही होगीए यह कल भी हो सकती है। ये टल भी सकती है। अजामिल के साथ भी ऐसा ही हुआ। अजामिल को भी विष्णु के दूतों ने यम के दूतों को नहीं ले जाने दिया। कहा कि उसने प्रायश्चित्त कर लिया है। उसने भगवान के नाम का स्मरण कर लिया है। तो क्या नारायण कहने माल से प्रायश्चित्त हो गयाए हां यदि आपने नारायण को पुकारा है तो उसे आप भले ही पहचानते नहीं है परंतु वह आपकी पुकार पर जरूर आयेगेए आपकी निष्ठा कितनी हैए श्रद्धा कितनी हैए आपके कर्म कैसे हैंघ् उस हिसाब से वो कुछ न कुछ जरूर करेंगे। इसको प्रायश्चित्त क्यों कहा गया हैघ् अगर हम कोई कर्म करते हैं और गलती होती है तो वह गलती आगे ना हो यही प्रायश्चित्त होता है। लेकिन इसकी कोई गारंटी नहीं कि आगे हम गलती नहीं करेंगे। लेकिन गलत करने के बाद भी यदि कोई परिस्थिति बनती है तो हमें भगवान की ओर उन्मुख हो जाना चाहिए। चित्रगुप्त सारा लेखा.जोखा लेकर आ गए थे लेकिन वह सामान्य धर्म था। सामान्य धर्म के आगे जब भागवत धर्म आता है तो सामान्य धर्म गौण हो जाता है। प्राथमिकता भागवत धर्म को दी जाती हैए अजामिल की नियति कुछ और थी परंतु भगवान के नाम की महिमा में बहुत बड़ा गुण होता है। अतः हमें प्रभु नाम का स्मरण करना चाहिए।





श्री अरविन्द आश्रम के नवजात जी बताते हैं जब भी वह कहीं बाहर जाते थे तो मां से पूछ कर जाते थे। एक बार वह बिना बताये ही आश्रम से बाहर चले गये। वहाँ से वह एक ट्रेन में जा रहे थे कि ट्रेनदुर्घटना ग्रस्त हो गई। बहुत सारे लोग चोटिल हो गये परंतु उनके साथ बहुत सारे लोग बच भी गये। उन को बड़ा अपराध बोध हुआए वहाँ से लौटकर मां के पास आये और क्षमा मांगते हुए बोले "मां मुझ से बड़ी भूल हो गईए हम आपसे पूछे बिना चले गये"ए तब श्री माँ ने कहा नहीं मुझे मालूम था कि यह ट्रेन.दुर्घटना होने वाली थीए परंतु तुम्हारी वजह से उसे मैंने रोका। तुम वहाँ थे इसीलिए तुम्हारे साथके सब लोग बच गए। अतः इस तरह का कोई समर्पित व्यक्ति होता है तो उसके आस.पास के स्पंदन से लोग बच जाते हैं और अगर दुष्ट व्यक्ति होता है तो उसके आस .पास के लोग भी उसके दुष्प्रभाव के कारण नहीं बच पाते हैं। यह नियति के बाद पुरुषार्थ का परिणाम होता है। मां ने कहा कि नियतियां बदलती हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि आप किस स्तर पर हो भौतिक स्तर परए प्राणिक स्तर पर और मानसिक स्तर पर कई तरह की नियतियों के अंदर हम होते हैं। लेकिन यह साधना और योग अभ्यास से बदला जा सकता है। अगर हम अपनी नियति भगवान केए आत्मा के और चेतनके हाथों में दे दे तो हमारी नियति उनके हाथों में सुरक्षित हो जाती है। इसके लिए हमें क्या करना चाहिएए साधना करनी चाहिएए साधना बहुत सरल हैए हम प्रार्थना करेंए हम अभीप्सा करें और हम इसके बारे में प्रयास करें। जब हम यह बराबर करते रहते हैं तो निश्चित रूप से हम परमात्मा या डिवाइन पावर की ओर उन्मुख होते हैं। हमारा समर्पण धीरे.धीरे भगवान की ओर बढ़ जाता है। जिम्मेदारियां अब भगवान की हो जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में हमारे मन के प्रतिकूल भी बातें होती हैं और अनुकूल भी बातें होती हैंए लेकिन अगर सब का समर्पण डिवाइन के प्रति है तो दीर्घकाल में वह हमारे लिए हितकर होता है। चाहे हमारे लिए प्रिय हो या अप्रिय हो।

श्री अरविन्द और श्री मां के संदर्भ में कुछ और चर्चा करते हैं। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान श्री मां और श्री अरविन्द ने बहुत से सैनिकों की रक्षा की थी। उन्हें मालूम नहीं था वह उनकी नियतियां थी। वहाँ जो सैनिक थे उनके ऊपर बम गिरने ही वाला थाए कि कोई ऐसी शक्ति ने उन्हें वहाँ से खींचकर हटा दिया और बम गिर गया श्री मां और श्री अरविन्द ने उनकी रक्षा की। यह सब कैसे संभव हुआए कहीं ना कहीं सैनिकों का समर्पण डिवाइन के प्रति जरूर रहा होगा। भारत की नियति के बारे में हम लोग पढ़ते .लिखते हैं। 1962 में चीन भारत युद्ध के समय ऐसा लगता है था कि चीन भारत को खा जाएगा। उसी समय हिमालय की कंदराओं से किसी साधु ने श्रीमां को पुकारा और कहा कि चीन भारत को खा जाएगा तबश्री मां ने कहा सुपर माइन्ड का अवतरण हो चुका है अतः भारत नष्ट नहीं होगा। यह चीज लागू होती है 1965 और 1971 भारत पाक युद्ध के समय भी। उस समय परिस्थितियां बहुत विकट थी। भारत की नियति कुछ ओर थी लेकिन पुरुषार्थ में भारत में ऐसी शक्ति हैए साधना हैए ऐसी आध्यात्मिकता है कि भगवान समय समय पर भारत की बागडोर अपने हाथ में ले लेते हैं और भारत का कुछ नहीं बिगड़ता है।

श्री मां ने एक ज्योतिषी के बारे में बताया कि उसने एक मछुआरे को कहा कि तुम्हारी मृत्यु समुद्र की वजह से होगी। तो उस दिन वह मछुआरा मछली पकड़ने नहीं गया। लेकिन जब वह एक समुद्री मछली खा रहा था तो उसका कांटा उसके गले में अटक गया और उसकी मृत्यु हो गई तो श्री मां ने ज्योतिषी को बुलाया और कहा कि तुम इसकी मृत्यु के कारण होए तुमने इसे बता दिया कि तुम्हारी मृत्यु समुद्र की वजह से होगी और यह हमेशा यही कहता रहा कि मेरी मृत्यु समुद्र से होगीए समुद्र से होगी और वही हो गया। मां ने लोगों से कई बार कहा कि तुम ज्योतिष की बातों पर ध्यान मत दो वो गलत हो सकती हैं। आप ज्योतिषकी बातों पर ध्यान देकर विपरीत परिस्थितियों को आमंत्रित करते रहते हैं और उन्हें मजबूत करते रहते हैं। इसके विपरीत अगर आप भगवान के प्रति समर्पण का भाव रखेंगे तो आपकी नियति बदल जायेगी क्योंकि आप चेतना के उस स्तर पर पहुंच जायेंगे जो आपकी नियति का स्तर नहीं था। भगवत गीता में यज्ञ भावनाकी बात कही गई है। यज्ञ भावना से मतलब यह नहीं कि कोई यज्ञ कुंड होए पुरोहित होए अग्नि होए द्रव्य हो या हवन सामग्री हो। यह उसका बाह्य रूप है उसका आंतरिक रूप जीवन के हर क्षण का उपयोग करना है। यह यज्ञ भावना क्या हैए हमें तीन चीजों का ध्यान रखना चाहिएए जो भी कर्म करें वह निष्काम होए कामना युक्त कर्म ना करेंए दूसरा यह लोक संग्रह की भावना से होना चाहिए और तीसरा काम छोटा हो या बड़ा ईश्वर समर्पण की भावना से होना चाहिए। अगर हम तीनों का अभ्यास करते रहेंगे तो हम हमारी अज्ञान चेतना से ऊपर उठेंगे और हमारी नियतिअलग





## सनातन धर्म के आधारभूत तत्त्व

-डॉ जे पी सिंह

जब धर्म के बारे में आज इतना विरोधाभास फैल रहा है तो यह हम सब का कर्तव्य है, विशेष रूप से जो श्रीअरविन्द से जुड़े हैं, और भी आध्यात्मिक संस्थाओं से जुड़े हैं उनकी एक जिम्मेदारी होती है इन विषयों को एक बहुत ही युक्तियुक्त तरीके से समाज के सामने प्रस्तुत किया जाए जिसके लिए आवश्यक है हम भारतीय, अपने धर्म को ठीक तरीके से समझें और दूसरों को समझा भी सकें। श्रीअरविन्द ने भी सनातन धर्म के अपने अनुभवों को जो उन्हें अलीपुर जेल में हुये थे, साझा किये हैं, अपने उर्पाड़ा भाषण में जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने की है। आज के विषय में दो शब्द हैं - सनातन और धर्म, इनकी हम चर्चा करेंगे। आप सब लोग जानते हैं सनातन का अर्थ है जो सदा से चला आ रहा है। साधारण भाषा में हम इसको सनातन कह सकते हैं, लेकिन धर्म के संबंध में तमाम तरह के विचार होते हैं, तमाम तरह की परिभाषायें होती हैं, अलग-अलग समय में अलग-अलग विचार आते हैं। धर्म के दो रूप हो सकते हैं। धर्म को पहले व्यावहारिक रूप में, हम लोग अपने कर्तव्य को धर्म से जोड़ा करते हैं। जैसे डॉक्टर का धर्म सेवा करना और व्यापारी का धर्म व्यापार करना है।

लेकिन धर्म के दूसरे रूप में हम अनेक धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। चाहे पुरोहित द्वारा घरों में जो धार्मिक कार्य करते हैं या धार्मिक उत्सव मनाते हैं ये सभी धर्म के अंतर्गत आते हैं। लेकिन धर्म का मतलब होता है जो व्यक्ति धारण करता है, अर्थात् जिसे किसी पर आरोपित करने की आवश्यकता ना हो। जो उस वस्तु के वस्तुत्व का बोध कराता हो उसे हम धर्म कहते हैं। एक लौकिक उदाहरण से इसे स्पष्ट करते हैं। जैसे अग्नि का धर्म है ऊष्णता, ऊष्णता को अग्नि में कहीं से आरोपित करने की या कहीं से अधिष्ठित करने की आवश्यकता नहीं होती। ऊष्णता अग्नि का धर्म है। इसी तरह शक्कर में मिठास उसका धर्म है। उसमें कहीं से मिठास आरोपित करने की या प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता नहीं होती। उसकी आंतरिक विशेषता को कहीं से आरोपित या अधिष्ठित करने की आवश्यकता नहीं होती। इसी तरह से मनुष्य का धर्म क्या है? हम अज्ञानवश कहते हैं हम मन हैं, हम शरीर हैं, आदि-आदि। लेकिन यह हमारा भौतिक स्वरूप है। यह हमारा धर्म नहीं है। हमारा धर्म आत्मा है। हमारा स्वरूप आत्मा है। आत्मा ही परमात्मा है। हम लोग जब एक महा वाक्य कहते हैं, “अहंब्रह्मास्मि” का मतलब है कि हम आत्मा हैं और आत्मा ही परमात्मा है। इसी तरह से पानी की तरलता उसका धर्म है। पानी पीला हो जाए, काला पानी हो जाए या लाल पानी हो जाये तो यह रंग पानी का धर्म नहीं है। हम जल में रंग बाहर से आरोपित कर रहे हैं। तरलता पानी का धर्म है। अब हम सनातन धर्म के इस भाव को समझते हैं। प्रायः सनातन धर्म, भारतीय धर्म, हिंदू धर्म, वेदांत धर्म, धार्मिक संस्कृति, आध्यात्मिक संस्कृति, भारतीय संस्कृति, आदि शब्दों को हम सनातन धर्म के पर्याय के रूप में ले सकते हैं और लेते भी हैं।

श्रीअरविन्द ने बहुत ही संक्षेप में सनातन धर्म को बताया है। उन्होंने कहा है कि सनातन धर्म ही परमेश्वर को हमारे आंतरिक जीवन में, बाह्य जीवन में, व्यक्ति और समाज में संसिद्ध करता है। यही वह परिवर्तनशील और बहुरूपीय धर्म है जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं, यह भारत में नित्य तथा सदा अंतर्निहित रहता है। यहाँ परमेश्वर भगवान के नाम के लिए आया है जो सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है और सर्वकालिक है। परमेश्वर से मतलब किसी देवी-देवता से नहीं है, बल्कि परमेश्वर वही है और उसको हमारे जीवन में संसिद्ध करना ही वास्तव में सनातन धर्म है। इसका आधार क्या है? इसके लिए श्रीअरविन्द ने कहा है “सत्य और पुरुषत्व ही इसके आधार हैं।” उसके लिए उन्होंने कहा है कि प्रथम तो हिन्दुत्व कोई संप्रदाय या हठवादी संगठन नहीं है, दूसरा यह कोई नियमों और कानूनों का पुलिंदा नहीं है। तीसरा इसमें सामाजिक विधि विधानों की कोई व्यवस्था नहीं है। तो फिर सनातन धर्म क्या है? उसके लिए





उन्होंने कहा है कि यह एक प्रबल शाश्वत और सार्वभौम सत्य है। इसने भक्त और भगवान की अनंत सत्ता पूरी तरह से दिव्य पूर्णता के साथ एकात्मता या आत्मसात् करने के रहस्य को सीख लिया है। इसलिए इसे सनातन धर्म कहते हैं। श्रीअरविन्द से कुछ लोगों ने पूछा, क्या सनातन धर्म के बारे में कोई नियम या कानून नहीं बनाये जा सकते हैं? वे कहते हैं कि बनाये जा सकते हैं। परंतु मत, सिद्धांत और नियम जब पवित्र और सहयोगी होते हैं जो इस महान तैयारी में सहायक हों, जो अनन्तता के साथ अर्थात् भगवान के साथ जुड़ने की प्रक्रिया में ये सहायक हों ऐसे सिद्धांत बनाये जा सकते हैं। इसी का नाम है सनातन। सनातन सत्य है, इटरनल, शाश्वत और सर्वव्यापी है। लेकिन इसका कोई नाम नहीं है। उदाहरणस्वरूप समुद्र हजारों किलोमीटर में फैला होता है, तब तक उसका कोई नाम नहीं होता। जैसे ही हमने जल धारा का नाम रख दिया, प्रशांत महासागर, हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी, अरब सागर आदि जैसे ही उसकी सीमायें किलोमीटर के दायरे में निश्चित हो गईं। लेकिन परमात्मा तो असीमित है इसलिये उसका नाम ही क्या रखा जा सकता है? इसलिए सनातन धर्म का कोई नाम विशेष नहीं रखा गया। क्योंकि इसमें कोई एक संकीर्ण मार्ग ही नहीं था जिसके द्वारा हम जा सकते हैं या पहुँच सकते हैं। इसे हम सीमित कैसे कर दें? इसलिए यह आवश्यक है कि सनातन को, सनातन हिंदू धर्म, या सनातन धर्म के नाम से ही जाना जाता रहने दें। डॉ सुरेशचंद्र त्यागी ने अपनी वार्ता में भारतीय संस्कृति या भारतीय धर्म के विधायक तय्य क्या हैं, बताया है। इसमें चार पुरुषार्थ, चार आश्रम, चार वर्ण, पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धांत की बात कही गई है।

ये पांचों बातें दुनिया के किसी भी धर्म या संप्रदाय में इकट्ठी नहीं कही गई है। इन पाँच मूलभूत तय्यों में से वर्ण व्यवस्था के बारे में स्वार्थवश या अज्ञानवश समाज में इतनी भ्रांतियाँ फैलाई गईं, जिसके परिणामस्वरूप समाज में एक दूसरे के प्रति वैमनस्य या नफरत के भाव पैदा हुए। वर्ण व्यवस्था को खत्म नहीं किया जा सकता। यहाँ हम यह स्पष्ट कर दें कि वर्ण व्यवस्था विकसित कैसे हुई? हमारी प्रकृति त्रिगुणमयी होती है। अर्थात्, प्रकृति में तीन गुण होते हैं। सत्व, रज और तम। इन्हीं तीन गुणों से हमारी प्रकृति बनती है। ये तीन गुण हर मनुष्य और जानवर में होते हैं, जो किसी पर आधारित रहते हैं। मनुष्य चाहे किसी भी वर्ण का हो ये तीन गुण सब में होते हैं, कम या अधिक मात्रा में। हमारे शास्त्रों में इसकी इस तरह व्याख्या की गई है। सत्व, रज और तम। इनमें से किसी व्यक्ति में सत्व का प्राबल्य होता है और रज और तम उससे कम होता है तो उसको ब्राह्मण कहते हैं। यदि दूसरे व्यक्ति में रज का प्राबल्य होता है और सत्व और तम उससे कम होता है तो उसे क्षत्रिय कहते हैं। तीसरे व्यक्ति में यदि सत्व और रज करीब-करीब बराबर होता है और तम उसमें कम होता है तो उसे वैश्य कहते हैं। और चौथा जिस व्यक्ति में तम का प्राबल्य होता है और सत्व और रज कम होते हैं तो उसे शूद्र कहते हैं। जिसे हम जाति कहते हैं जैसे ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र तो वैश्य में भी ब्राह्मण हो सकते हैं, और शूद्र में भी ब्राह्मण हो सकते हैं। क्योंकि यह प्रकृति त्रिगुणमयी है। इसको हम निकाल नहीं सकते।

भगवद्गीता में कहा गया है कि यह त्रिगुणमयी प्रकृति हर समय बदलती भी रहती है। सुबह के समय किसी में सत्व अधिक और रज व तम कम हो सकता है और दिन में रज अधिक और सत्व व तम कम हो सकता है। कुछ व्यक्तियों ने या राजनेताओं ने स्वार्थ वश या अज्ञानता से इसके संबंध में इतनी भ्रांतियाँ फैला दी कि समाज में जगह-जगह इससे वैमनस्य और नफरत पैदा हो गई। इस त्रिगुण प्रकृति को हमें समझने और समझाने की जरूरत है। रामकृष्ण परमहंस ने इस संबंध में कहा है अगर हम यह कहते हैं कि हम मात्र बौद्धिक प्राणी हैं, तो हम हिंदू नहीं हैं। उसका कारण है बौद्धिकता उनके लिए छोड़ दी है जिन्होंने भगवान को देखा नहीं और भगवान बुद्धि से नहीं देखे जा सकते। यह उनके लिए बवदबमचज हो सकता है। क्योंकि हमारी चेतना के इतने स्तर होते हैं कि जब बुद्धि से ऊपर उठते हैं तो उन्हें हम महसूस करते हैं, अनुभव करते हैं। तब वो संसिद्ध करते हैं कि बुद्धि और मन के ऊपर भी मनुष्य होता है। अतः हम बौद्धिक प्राणी तो हैं हीए उसके ऊपर भी हैंए मात्र बौद्धिक प्राणी ही नहीं हैं।

अब वेद और वेदान्त शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते हैं। वेद चार हैं जो अपौरुषीय हैं। सनातन धर्म के हैं। वैदिक धर्म के हिस्से हैं। वेदान्त का मतलब है वेदों में वर्णित कर्मकांड और ज्ञान का अध्ययन करने के बाद जो सार निकलता





है वह वेदान्त कहलाता है वेदों का अंत। अर्थात् वेदों के ज्ञान को हमने कहाँ तक आत्मसात् किया है वो होता है आत्मा का परमात्मा से एकाकार या एकात्मभाव के भाव स्थापित करना। हमारे यहाँ चार महावाक्यों में इसकी व्याख्या की है पहला जो चेतन है वही ब्रह्म है, दूसरा आत्मा ही ब्रह्म है, तीसरा वो तुम ही हो और चौथा मैं ही ब्रह्म हूँ। इन चार महावाक्यों का भाव क्या है, आत्मा को परमात्मा से संसिद्ध करना या आत्मा को परमात्मा से एकाकार करना, आत्मसात् कराना या एकात्मभाव स्थापित करना। सनातन धर्म की यह पृष्ठभूमि है। हमें सनातन धर्म को स्पष्ट करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? श्रीअरविन्द ने 'भारतीय संस्कृति के आधार' में लिखा है (जो एक प्रतिक्रियात्मक ग्रंथ है), बहुत वर्षों पहले एक विलियम आर्चर जो एकनाट्य समालोचक थे उन्होंने "भारतीय परंपराओं को एक बर्बरता का स्तूप" कहा है जब कि उनका इस विषय से कोई लेना देना नहीं था। भारतीय विद्वानों ने कहा कि ऐसी बातों पर ध्यान देना समय को नष्ट करना है। जार्ज वुडरफ जो कलकत्ता के हाईकोर्ट के जज थे, महान ज्ञानी पुरुष थे, तंत्र के व्याख्याता थे, उन्होंने कहा यदि इसका विरोध नहीं किया गया तो सनातन धर्म के प्रति एक गलत धारणा पूरे विश्व में फैल जायेगी। उन्होंने एक पुस्तक लिखी "क्या भारत सभ्य है?" श्रीअरविन्द ने जब यह पुस्तक पढ़ी तो प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उन्होंने "ध्वनदकंजपवदे व प्दिकपंद ब्रसजनतम" लिखी। उन्होंने कहा कि जार्ज वुडरफ ने "क्या भारत सभ्य है?शु जो लिखा है उसमें कोई संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। इसमें भारतीय परंपराओं की व्याख्या की है और कहा कि अंग्रेजों ने एक ऐसे व्यक्ति से भारतीय परंपराओं की आलोचना कराई जो भारतीय परंपराओं के बारे में जानता नहीं था। इसलिए यह आवश्यक है कि हम भारतीय संस्कृति को ठीक से समझें, और उसका प्रचार.प्रसार करें।

"सनातन धर्म क्या है?शु "इसकेआधार क्या हैं?" श्रीअरविन्द ने कहा कि इसके तीन आधारभूत मूल तऱँव हैं। यह धर्म अनुभूति का धर्म है। इसमें कोई मानसिक परिकल्पना नहीं है, लेकिन यह विस्तृत और व्यापक अनुभव है यह तीन मूल तऱँवों पर प्रतिष्ठित है। पहला मूल तत्त्व है वेदों के एकम् सत्य, तथा उपनिषदों के ,कमावा,तिथ, बौ)ों के शाश्वत तऱँव और मायावादियों का भ्रम है इसमें प्रकृति और पुरुष को समायोजित किया गया है। एक शब्द में कहें तो सनातन का विचार करना। श्रीअरविन्द ने सबसे पहले कहा है परमेश्वर को हमारे आंतरिक और बाह्य जीवन में व्यक्त और समाज में संसिद्ध करना है। संसिद्ध कैसे होगा? अर्थात् हमें करना क्या है? "सनातन के अनुभव का विचारशु यह सनातन के अनुभव का विचार पहला मूलभूत तऱँव है। उन्होंने जब वेदों का अध्ययन प्रारंभ किया उसके पहले ही उन्हें अपनी साधना के परिणामस्वरूप अनेक अनुभूतियाँ हो चुकी थी। इला, सरमा और सरस्वती का प्रादुर्भाव हो चुका था।

लेकिन पश्चिम के लोग इसे समझते नहीं हैं। उनके लिए बुद्धि ही सबसे बड़ा प्रमाण है। उसके आगे वे नहीं जानते। उन्होंने सनातन धर्म के बारे में एक संकीर्ण लाइन खींच दी। कहा कि यह ऐसा धर्म है जिसका कोई अध्यक्ष नहीं है। जिसमें दंड की कोई व्यवस्था नहीं है। कोई किसी को कितना भी प्रताड़ित करे तो भी उसे दंड नहीं दिया जा सकता है। कोई कितना भी गलत काम करे उसे दंड नहीं दिया जाता है। इसी तरह की अनर्गल अनेक बातें विलियम आर्चर ने अपनी पुस्तक "निजनतम व प्दिकपं" में लिखी। हम अपने स्वार्थ के परिणामस्वरूप धर्म को एक स्टेपनी बना लेते हैं। जब चाहें तब जीवन रूपी गाड़ी में फिट कर दें जब चाहें तब हटा दें। धर्म एक स्टेपनी नहीं है, भारतीय यह समझते तब तक पश्चिम जगत के लोगों ने भारतीय परंपराओं का दुष्प्रचार कर दिया। सनातन धर्म का विचार आने के बाद अब उस तक पहुँचने के मार्ग को जानेंगे। श्रीअरविन्द ने कहा कि सनातन धर्म तक पहुँचने के अनेक मार्ग हैं। हम कोई एक मार्ग चुन सकते हैं। जैसे हम सुल्तानपुर में बैठे हैं और आप नोएडा में। हमारा लक्ष्य नोएडा पहुँचना है हम अनेक मार्ग से नोएडा पहुँच सकते हैं। साइकिल, कार, रेल, बस, ट्रेन और समय ज्यादा लगेगा पैदल भी पहुँच सकते हैं। हजारों किलोमीटर दूर हम विभिन्न साधनों से विभिन्न मार्ग से जा सकते हैं।

इसी तरह हिन्दू धर्म इतना व्यापक धर्म है कि उस अनंत के पास, परमेश्वर के पास, हम सहों मार्ग से पहुँच सकते हैं। यह सनातन धर्म का दूसरा आधार भूत तऱँव है। पहला अनंत का विचार और दूसरा उस तक पहुँचने के सहस्रों मार्ग। पश्चिमजगत के लोगों को पुनः विचार आया कि अनंत तक पहुँचने के अनेक मार्ग कैसे हो सकते हैं? हमने







तैंतीस करोड़ देवी देवताओं की बात कही है। तैंतीस करोड़ को तैंतीस कोटि भी कहा है। तैंतीस कोटि को = 10<sup>11</sup>। मयी प्रकृति भी कहा गया है। ये सब विचार प्रचलित हैं ईश्वर तक पहुँचने के। हर इंसान की मनोवृत्ति उसके पूर्व जन्मों के आधार पर चलती है। अलग-अलग व्यक्ति की मनोवृत्ति का स्तर अलग-अलग होता है। जो जहाँ हो वहीं से अनंत तक पहुँचे और जहाँ भी है वहीं से अपना मार्ग स्वयं चुने। अपने स्वयं की स्थिति के हिसाब से कोई भी मार्ग चुन सकते हैं। ऐसा हमारे शास्त्रों में कहा गया है। स्वामी विवेकानंद ने कहा कि वह दिन बड़ा सुखद होगा जब हर व्यक्ति का अपना एक धर्म होगा और अनंत तक पहुँचने का अपना-अपना साधन होगा। यह सनातन धर्म की अनुभूति है जिसे हमारे शास्त्रों में कहा गया है। यह एक बड़ी उपलब्धि है। हमने सुना है कण कण में भगवान विद्यमान हैं। कहते हैं कि जो लोग उस ऊँचाई तक पहुँचे हैं उन्होंने देखा भी है। सनातन धर्म का तीसरा मूल तत्त्व हम कहते हैं “हमारे हृदय में भगवान का वास है। श्रीअरविन्द को उनके तीन दिन के बड़ौदा के प्रवास के दौरान इसकी अनुभूति हो गई थी। सारा जगत उन्हें निस्सार लगने लगा था। लेकिन जब वे अलीपुर जेल में गये तो वहाँ सामान्य परिस्थिति से विपरीत परिस्थितियाँ थी लेकिन वे उनके लिए भगवान की जन्म स्थली बन गई। भगवान का प्राकट्य स्थल हो गया। गीता के उपदेश की जगह हो गई, विवेकानंद से वार्तालाप की जगह हो गई और वहीं पर उन्हें अनुभव हो गया कि “वासुदेव सर्वत्र है”। तो हम देखते हैं कि उन्हें बड़ौदा में वासुदेव की अनुभूति हुई और अलीपुर जेल में वासुदेवंसर्वमिति का ज्ञान हुआ। इसलिए हमारे शास्त्रों में कहा गया है भगवान को अपने अंदर महसूस करो। कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। ईश्वर को अपने अंदर महसूस करना आसान है।

क्योंकि वह हमारे निकटतम है। परंतु अगर हम उसे बाहर भी ढूँढे तो मिलेगा। इसलिए तीसरा मूल तत्त्व व्यक्तिगत रूप से शाश्वत अपने हृदय में परमेश्वर का वास है। अब प्रश्न उठता है कि यदि हमारे हृदय में प्रभु का वास है तो हमें नजर क्यों नहीं आता? इसका कारण है हमारा हृदय चारों तरफ से मन की मलिनताओं से घिरा रहता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मलिनताओं से घिरा रहता है। अगर हम साधनाओं के परिणामस्वरूप इन मलिनताओं को दूर करते हैं तो परमात्मा की महिमा उसमें अभिव्यक्त होती है। इसलिए कहा जाता है कि सारी साधनाओं का मूल उद्देश्य मन को निर्मल बनाना होता है। सनातन धर्म में कहा गया है यँ तो इसके अनेक ग्रंथ हैं, गीता, पुराण, उपनिषद, वेद, ब्राह्मण ग्रंथ आदि। इस धर्म ने कुरान और बाइबिल को भी नकारा नहीं है लेकिन इसका असली धर्मग्रंथ हृदय में विद्यमान है और दुनिया के सभी धर्मों द्वारा अंत में हृदय में ही उस शाश्वत प्रभु का अनुभव किया जा सकता है, यह श्रीअरविन्द ने कहा है। एक और उदाहरण महाभारत से, जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था, “उस समय नारी बीच सारी है या सारी बीच नारी है” वह अपनी रक्षा का हरसंभव प्रयास कर रही थी, परिवार के सब लोग मूक दर्शक बने उस चीरहरण को देख रहे थे।

उसने द्वारकाधीश को याद किया। द्वारकाधीश आये और उनकी रक्षा भी की। द्रौपदी ने पूछा, भगवन आप को इतनी देर क्यों लगी? कृष्ण ने कहा द्रौपदी तुमने द्वारकाधीश कहकर पुकारा। द्वारका से आने में मुझे इतना समय लग गया। अगर तुमने अपने हृदय में पुकार लिया होता तो मैं तो यहीं था। भगवान् यहाँ भी थे और वहाँ भी थे। अर्थात् जैसे-जैसे हमारी साधना बढ़ती जाती है वासुदेव सर्वत्र हैं की भावना विकसित होती जाती है। यह सनातन धर्म की पराकाष्ठा है। हम कहीं भी उन्हें महसूस कर सकते हैं। बहुत सारे महात्मा इस चीज को जानते हैं। हमारे यहाँ मूर्ति पूजा होती है बहुत से लोगों ने इसका विरोध भी किया। क्या हमारे देवी-देवता जैसे दिखते हैं वैसे हैं? प्रीतीदास गुप्ता के ग्रंथ में गणेश जी के बारे में चर्चा है। श्री माँ ने कहा कि मूर्तिपूजा भी हमारे धर्म का ही हिस्सा है इसका कभी विरोध नहीं करना चाहिए।

एक समय की बात है कि श्रीअरविन्द किसी से बात कर रहे थे, श्रीमाँ ने पूछा कि आप किस के संदर्भ में बात कर रहे हो, उन्होंने कहा गणेश जी के बारे में। श्री माँ ने कहा मैं भी गणेश जी से बात करना चाहती हूँ। उन्होंने कहा कि आप गणेश जी का स्मरण कीजिए। माँ ने गणेश जी का ध्यान किया, वे भारी भरकम शरीर के साथ प्रकट हुए और





पूछा, 'माँ आपने मुझे क्यों पुकारा?' माँ ने कहा पहले तुम छोटे हो जाओ। गणेश जी छोटे रूप में हो गये। माँ ने कहा जब रि(सि)के देवता हमारे सामने हैं तो हमें किस बात की कमी। गणेश जी ने कहा, मुझे एक जरूरत है। माँ ने कहा बताओ तुम्हें क्या चाहिए? पांडिचेरी में जो मेरा मंदिर है वहाँ तक मेरे भक्तों के आने जाने कि लिए तीन फीट का मार्ग चाहिए। माँ ने वहाँ तीस फीट का रास्ता दे दिया। हमारे देवी देवताओं का एक आकार भी होता है। जो लोग नहीं जानते वे बेवजह आलोचना करते हैं, विरोध करते हैं। गीता के एक श्लोक में धर्म शब्द आया है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज, अहंत्वासर्वपापेभ्यो मोक्षयि”यामिमाशुचरु ॥18-66 ॥

इस श्लोक की सब ने अपनी-अपनी दृष्टि से व्याख्या की है। इसमें श्री कृष्ण ने समझाते हुए कहा है "तू सम्पूर्ण

धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ।" अज्ञानवश हम अपने को शरीर समझते हैं, कोई कहता है हम बौद्धिक प्राणी हैं, मैं डॉक्टर हूँ, मैं संत, मैं महात्मा हूँ, आदि-आदि। इससे हमारा तादात्म्य हो जाता है। एकात्म का भाव हो जाता है, अपनी सांसों में उसकी खुशबू को अनुभव करते हैं। भगवान् अर्जुन को कहते हैं, जिसे तुम समझते हो उसे छोड़ तुम मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें हर पाप से मुक्त कर दूँगा। भगवान् यह संदेश अर्जुन को देते हैं और उसके माध्यम से हम सब को देते हैं। उन्होंने पाप के बारे में कहा जो भी कर्म करने से मन अशांत हो जाता है वह पाप है। किसी के ध्यान में वह कर्म अच्छा हो या बुरा लेकिन हमें अशांत कर रहा है तो वह पाप है। तुम शांत रहो, चिंता मत करो। यह हमारे धर्म की संस्कृति की व्यापकता ही है जो सब को समेट लेती है, सबसे प्यार करती है। अतः यह आशा और विश्वास है कि आने वाले समय में सनातन धर्म विश्वव्यापी धर्म बनेगा।

## अन्तःजीवन

-डॉ. धर्मपाल सिंह

मानव-जीवन के दो पक्ष होते हैं: बाह्य पक्ष एवं आन्तरिक पक्ष। बाह्य पक्ष दृश्य होता है और आन्तरिक पक्ष अदृश्य। दोनों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। यदि दोनों पक्षों में समन्वय होगा, तभी जीवन सुखी होगा। वर्तमान समय में यह सामन्जस्य नहीं दिखाई देता है जिसके कारण मानव-जीवन में घोर अशान्ति, कुण्ठा एवं दुःख व्याप्त है। ढेर सारी भौतिक प्रगति के बावजूद व्यक्ति का जीवन सुखी नहीं है। सांसारिक इच्छाओं ने मानव को पशु से बदतर बना दिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्त्र में हम गिरावट देख रहे हैं। मानव न केवल अपने वातावरण और समाज से कट गया है बल्कि वह स्वयं से भी कट गया है। आधुनिक संवेदना के प्रख्यात् अँगरेज़ी साहित्य के कवि टी.एस. इलियट ने अपनी कविता 'द वेस्टलैण्ड' में मानव के इस अकेलेपन को गहराई से महसूस किया है। मानव-जीवन की केन्द्रीय समस्या है कि वह केवल अपने दायरे में सिमट कर रह गया है। वह उस किसी भी चीज के बारे में नहीं सोच पाता जो उससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित न हो। वर्तमान समय में व्याप्त भ्रष्टाचार, आतंकवाद, प्रदूषण की जड़ यही है। जब तक व्यक्ति स्वयं इसे सुधारने का महान् कार्य अपने हाथ में नहीं लेगा, कोई भी सरकार या उसके कानून इसे सुधार नहीं सकते हैं। मानव-निर्माण ही इस दिशा में एकमात्र समाधान है और इसका रास्ता गौतम बुद्ध, स्वामी राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द सरस्वती, योगी श्री अरविन्द, महात्मा गाँधी सदृश महापुरुषों द्वारा हमें दिखाया गया है। अतः प्रथमतः मानव को अपने बारे में जानना है और तदुपरान्त उसे अपने ब्रह्माण्ड के साथ सम्बन्ध के बारे में जानना है जिसका ही वह एक भाग है।





मानव का व्यक्तित्व भौतिक, प्राणिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों से निर्मित है और ये सारे तत्त्व अन्तर्सम्बन्धित होने के साथ-साथ ब्रह्माण्ड से भी सम्बन्धित हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में मानव-शरीर के निर्माण में पाँच तत्त्वों के योगदान की चर्चा की है- पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु। इसका अर्थ है कि ये तत्त्व मानव से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार मानव को स्वयं को दुरुस्त रखने के लिए उसे इन तत्त्वों का उसी प्रकार ध्यान रखना होगा जिस प्रकार वह अपने शरीर का ध्यान रखता है। इसी दृष्टिकोण से हमारे ऋषियों ने लोगों को प्रकृति की पूजा करने की सलाह दी है। वेदों में नदियों को माता तथा वृक्षों को भ्राता कहा गया है। परन्तु आजकल हम लोग इसके ठीक उल्टा कर रहे हैं और इसके भयंकर परिणाम भी हमारे समक्ष आ रहे हैं। अतः यह परमावश्यक हो जाता है कि हम अपने व्यक्तित्व के इन तत्त्वों को ठीक से जानें और उनके अन्तर्सम्बन्ध को स्थापित करें। यह ज्ञान हमें मानव-निर्माण और चरित्र-निर्माण की ओर ले जायेगा। इस प्रकार हम मानवता के समक्ष उपस्थित वर्तमान समस्याओं का समाधान करने के लिए आगे बढ़ सकेंगे।

हमारा शरीर माँस, हड्डी तथा कोशिकाओं आदि से बना है। इनका रख-रखाव नसों में दौड़ने वाले खून से होता है। स्वस्थ जीवन के लिए अपरिहार्य ऑक्सीजन समस्त शरीर में इन्हीं रक्त कोशिकाओं द्वारा प्रदान किया जाता है। अतः रक्त में हीमोग्लोबिन का सही स्तर बनाये रखने के लिए शुद्ध हवा की श्वास लेना आवश्यक है। रक्त को ऊर्जस्वित रखने के लिए दौड़ना, तैरना, खेलना, आसन एवं प्राणायाम सहित शारीरिक व्यायाम का अभ्यास किया जा सकता है। प्रातःकाल जागना बहुत लाभदायक होता है क्योंकि सूर्योदय के पूर्व हवा अत्यधिक शुद्ध होती है। इसी के साथ जल्दी सोना गहरी नींद देता है जो स्वस्थ जीवन के लिए अमृत है। यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि हमारा शरीर प्राणिक तत्त्वों से वैसे ही घिरा हुआ है जैसे लिफाफे से पत्त। ये प्राणिक तत्त्व हमारे शरीर की सभी प्रकार के रोगों एवं विषमताओं से रक्षा करते हैं। अब तो चिकित्सा विज्ञान भी इन प्राणिक तत्त्वों के महत्त्व को स्वीकार करने लगा है।

यह प्राणिक भाग मनोवेगों एवं भावनाओं से बना है। इसी में महत्त्वाकांक्षा, भय, ईर्ष्या, उत्तेजना, क्रोध, अवसाद आदि विघ्नरूपी तत्त्व पाये जाते हैं। ये तत्त्व हमारी शारीरिक क्रियाओं को सीधे प्रभावित करते हैं। अतः हमें अपने प्राणिक भाग को इन विघ्नकारी तत्त्वों से बचाना है। एक बार जब प्राणिक भाग में संतुलन स्थापित हो जाता है, तब हमारा भौतिक व्यवहार स्वाभाविक रूप से संतुलित हो जाता है। अब हम प्राणिक भाग के विघ्नकारी तत्त्वों का विश्लेषण करते हैं।

शरीर में स्नायविक थकान अथवा प्राणिक असंतोष के कारण अवसाद पैदा होता है। शारीरिक थकान के परिणामस्वरूप अवसाद से छुटकारा विश्राम करने से मिल जाता है। लेकिन प्राणिक असंतोष के कारण उत्पन्न अवसाद एक गंभीर स्थिति है जिसे सावधानीपूर्वक दूर किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम अवसाद के कारण का पता लगाना चाहिए और तदुपरान्त यह जानना चाहिए कि इसका सम्बन्ध आन्तरिक अभीप्सा से है या यह एक सामान्य स्थिति है। सामान्यतया यह पाया जाता है कि यह एक अस्थायी स्थिति है और इसे अलग-थलग किया जा सकता है।

प्राणिक भाग का सबसे खतरनाक तत्त्व क्रोध है जिसका अनुभव हम प्रत्येक दिन करते हैं। यह शरीर और मन के अनेक रोगों का कारण है। लोगों में एक ग़लत धारणा है कि क्रोध को व्यक्त करने से इससे छुटकारा मिल जाता है। परन्तु क्रोध की अभिव्यक्ति इसे कम करने के बजाय इसके बार-बार घटित होने की पुष्टि करता है। क्रोध की शक्ति को कमजोर करने का सबसे अच्छा तरीका है कि इसे किसी भी दशा में कार्य अथवा वाणी में व्यक्त न होने दिया जाय। इसके अलावा यह उल्लेखनीय है कि क्रोध अन्य आवेगों की भाँति हमारे ऊपर बाहरी प्रतिकूल शक्तियों द्वारा फेंका जाता है, यह व्यक्ति के भीतर नहीं पैदा होता है। अतः व्यक्ति को बाहर से फेंकी जाने वाली किसी चीज से अपने को बचाने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति क्रोध से अनासक्त हो सकता है और इसे समाप्त कर सकता है।





उत्तेजना, हड़बड़ी और अशांति समुद्र के ऊपर तैरने वाले झाग की भाँति होते हैं। इनका कोई अस्तित्व नहीं होता है किन्तु ये हमारे जीवन में काफी उपद्रव पैदा करते हैं। मानवता को भौतिकता से मुक्ति दिलाने के लिए समर्पित विक्टोरिया युग के अंगरेज़ कवि मैथ्यू ऑरनाल्ड ने अपनी कविता 'द स्कॉलर जिप्सी' में अशान्ति को आधुनिक जीवन का विचित्र रोग कहा है। लोग सोचते हैं कि यदि वे निरंतर भाग दौड़ नहीं कर रहे हैं और आवेशपूर्वक कार्य नहीं कर रहे हैं, तो वे संसार में सफल होने वाले नहीं हैं। इस तरह का विचार भ्रामक है। यह उसी तरह है कि जैसे हम गिलास में पानी को पीटना शुरू करें और पानी हिलने लगे लेकिन कोई परिवर्तन न हो। यह पीटने की क्रिया एकदम निरर्थक है। मानव-प्रकृति का यह सबसे बड़ा भ्रम है। यह व्यक्ति को कहीं भी नहीं ले जाता। संसार में सभी बड़े कार्य उन्हीं लोगों द्वारा किये गये हैं जो कार्य में अनासक्त भाव से लगे रहते हैं। संसार की रचना शान्ति में की गई है। कुरुक्षेत्र के मैदान में खड़े अर्जुन की समस्या भी अशांति और कार्य के प्रति आसक्ति की ही थी। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कार्य से अनासक्त रहने तथा शान्तिपूर्वक कार्य करने का उपदेश दिया था। उन्होंने अर्जुन को उनका यंत्र (निमित्तमालं भव सव्यसाचिन!) बनने के लिए कहा और इस प्रकार यंत्र बनकर ही अर्जुन ने मानसिक शान्ति प्राप्त की। उत्तेजना, हड़बड़ी और अशान्ति से दूर रहने के लिए सबसे अच्छा साधन ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण है। समर्पण के पश्चात् व्यक्ति का सारा ध्यान अपने से हटकर कार्य में लग जाता है। एक चित्र बनाते समय यदि चित्रकार अपने बारे में चिंतन करता है तो कभी भी अच्छा चित्र नहीं बना पायेगा। यह चित्र चित्रकार के अपने व्यक्तित्व का प्रक्षेपण होगा और यह जीवन, ऊर्जा एवं सौन्दर्य से रहित होगा। परन्तु यदि वह स्वयं उस वस्तु में डूब जाता है जिसकी अभिव्यक्ति उसे करनी है, यदि वह ब्रह्म, चित्र, कैनवास, विषय, रंग बन जाता है और उनमें निवास करने लगता है तब वह निश्चित रूप से कोई भव्य कृति बना सकेगा। इटैलियन चित्रकार पिकासो के चित्रों का यही रहस्य है। ईर्ष्या मानव का गुप्त शत्रु है। यह व्यक्ति के भीतर छिपी रहती है। जब यह बाहर आती है, तो यह समस्त व्यक्तित्व को प्रभावशाली रूप से घेर लेती है और व्यक्ति अनजाने ही स्वयं को इससे संबद्ध कर लेता है। वह इसके हाथ का एक यंत्र बन जाता है। व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि ईर्ष्या आधिपत्य करने वाली वृत्ति से उत्पन्न होती है। यह आधिकारिक वृत्ति धन या सांसारिक शक्ति या प्रेम का आधार होती है। ईर्ष्या से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति को अपनी आधिकारिक वृत्ति से मुक्ति पानी होगी। यह मुक्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अथवा आध्यात्मिक परिवर्तन से पायी जा सकती है।

भय अचेतना का विषय है। इसकी उत्पत्ति अज्ञान से होती है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु की प्रकृति नहीं जानता है या अपने कार्य के परिणाम को नहीं जानता है, तब भय पैदा होता है। अनजान चीज से भय पैदा होता है। एक बार जब किसी वस्तु का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है, तब उस वस्तु से भय नहीं लगता है। अतः व्यक्ति को उस वस्तु का सामना दृढ़ता से करना चाहिए जिससे उसे डर लगता है। जैसे ही हम भय के आमने-सामने होते हैं, भय काफूर हो जाता है। भय पर विजय प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अपनी चेतना में पूरी तरह जाग्रत रहना चाहिए।

संसार में मानव के अस्तित्व के लिए अकर्मण्यता सबसे घातक तत्त्व है। यह मानव में जीने की लालसा को ही समाप्त कर देती है। ऐसे व्यक्ति के जीवन से सारा सुख अदृश्य हो जाता है। अकर्मण्यता की पकड़ में आ जाने पर व्यक्ति नीचे ही गिरता जाता है और अनेक प्रकार की असभ्य आदतों का शिकार हो जाता है। कुछ लोग शराब पीने लगते हैं, कुछ जुआ खेलने लगते हैं और कुछ तो जहर खाकर प्राण त्याग देते हैं। इस प्रकार वे अपना स्वास्थ्य नष्ट कर लेते हैं, अपनी बुद्धि नष्ट कर लेते हैं और अंततः अपना जीवन नष्ट कर लेते हैं। प्रायः यह सुना जाता है कि लोग जीवन के दुःख को भुलाने के लिए शराब का सेवन करने लगते हैं। परन्तु वे दुःख कम करने के बजाय दुःख की वृद्धि ही करते चले जाते हैं। व्यक्ति को संवेदनशून्य नहीं होना चाहिए, उसे अचेतना में नहीं जाना चाहिए बल्कि उसे अपने जीवन में छिपे प्रकाश, सत्य, आनन्द के लिए संघर्ष करना चाहिए। इस तरह का प्रयास व्यक्ति के भीतर एक आवेग पैदा करता है जो उसे ब्रह्माण्ड की शक्तियों से सम्बद्ध कर देता है। ब्रह्माण्ड सुख का स्रोत है और अकर्मण्यता का शत्रु है।





अब हम देखेंगे कि प्राणिक भाग को किस प्रकार रूपान्तरित किया जा सकता है। प्रकृति की शक्तियों द्वारा संचालित होकर कार्य करने वाले बहुत से लोग यह कहते हैं कि प्रकृति हमारे शरीर का प्रयोग अपने एक यंत्र के रूप में करती है। इस प्रकार वे अपने उन कार्यों को उचित ठहराते हैं जो प्राणिक भाग द्वारा नियंत्रित होते हैं। परन्तु व्यक्ति के पास मन भी है। जैसे-जैसे वह विकसित होता है, वह अपने प्राणिक एवं शारीरिक क्रियाओं को अपनी बुद्धि एवं अपने संकल्प से नियंत्रित करना सीखता है। निस्संदेह यह एकपक्षीय नियंत्रण होता है क्योंकि बुद्धि प्रायः प्राणिक इच्छाओं द्वारा भ्रमित करा दी जाती है और वह उसकी गलत गतिविधियों को उचित ठहराने लग जाती है। अतः तपस्या या कठिन नैतिक नियम से इच्छाओं का दमन न तो स्थायी होता है और न ही व्यावहारिक।

इसके लिए हमें अपने भीतर जाना होगा, जहाँ पर प्राणिक तत्त्व के पूर्ण नियंत्रण के लिए चैत्य का शासन होता है। सत्य चेतना में निवास व्यक्ति को आध्यात्मिक रूप से पवित्र कर देता है। तब उसे यह ज्ञात होता है कि इच्छाएँ बाहर से शरीर में प्रवेश करती हैं। सामान्यतया लोग इच्छाओं को तब तक नहीं जान पाते, जब तक ये उसके प्राणिक शरीर में प्रवेश नहीं करतीं। यदि हम इच्छाओं की कार्यपद्धति तथा पूर्व में इनके द्वारा उत्पन्न किये गये असंतोष का विश्लेषण कर सकें, तब हम अपने प्राणिक भाग को सांसारिक इच्छाओं से हटाकर ईश्वर की अभीप्सा की ओर मोड़ सकते हैं। एक बार जब हम प्रकृति से बाहर आ सकें और इच्छाओं के बाहर से प्रवेश को जान सकें, तो इनसे छुटकारा पाना आसान होगा। इच्छाओं का दमन और अभिव्यक्ति दोनों इसके उपचार नहीं हैं। सबसे पहले इच्छाओं को बाहर लाना है और उन्हें सतह पर फेंकना है ताकि हमारे आन्तरिक भाग साफ और शान्त हो सकें। प्राणिक के रूपान्तरण में पहला कदम यह है कि हमारे भीतर इच्छाओं को स्थान न देने की संकल्प-शक्ति पैदा हो। प्राणिक भाग के रूपान्तरण के लिए दूसरा कदम अध्यवसाय है। व्यक्ति को अपने भीतर प्राणिक की पहचान करने की योग्यता विकसित करनी है। उसे मन, प्राण तथा शरीर से आने वाले आवेगों के भीतर अन्तर करना होगा। प्रारम्भ में सभी आवेग मिश्रित एवं अस्पष्ट लगते हैं। उसे आवेग की उत्पत्ति को पहचानना होगा। यह एक लम्बी अवधि का कार्य है। परन्तु एक बार जब व्यक्ति विभिन्न भागों की पहचान कर लेता है, तब उसे यह विश्लेषण करना चाहिए कि प्राणिक अपने हस्तक्षेप से चेतना में किस प्रकार परिवर्तन लाता है। इस स्तर पर प्राणिक को बहुत सावधानीपूर्वक और शान्त तरीके से संचालित करना चाहिए। जो लोग अति-उत्साह में इसे वश में करने का प्रयास करते हैं, वे बुरी तरह असफल होते हैं। प्राणिक को साधने का सर्वोत्तम साधन है कि उसे ईश्वर के लिए कार्य करने के लिए तैयार करना। यह बहुत शक्तिशाली होता है और बुद्धिमान व्यक्ति को मूर्ख में बदल सकता है। बहुत सोच-विचार के साथ इसका संचालन करना चाहिए परन्तु व्यक्ति को इसके प्रति कभी-भी समर्पित नहीं होना चाहिए।

मानसिक रूप से प्राणिक को जानने का प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि मन संकोच करता है और संदेह व्यक्त करता है। इसे चेतन संकल्प, ध्यान और अभीप्सा के द्वारा ही जानना चाहिए। सतत सतर्कता के साथ एक साधन अपनाया जाता है जो एकदम निजी होता है। विभिन्न व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। यदि कोई व्यक्ति उस साधन का अभ्यास सतत ध्यान से करेगा, तब वह अपने को अपनी आन्तरिक चेतना में पा लेगा। यह आन्तरिक चेतना दिव्य शक्ति का स्रोत है। जब व्यक्ति की अपनी वैयक्तिक शक्ति क्षीण हो जाती है तब दिव्य शक्ति उसे दुःख, क्रोध, चिंता, परेशानी आदि भावनात्मक, प्राणिक या मानसिक व्याकुलता से मुक्त करने के लिए उसका नियंत्रण अपने हाथ में ले लेती है। यह नई चेतना व्यक्ति को दुःख, क्रोध, परेशानी के प्रति उत्तरदायी नहीं बनने देती है चाहे इनके कारण वहाँ विद्यमान ही क्यों न हों! मन और मानसिक संकल्प के द्वारा प्राणिक में लाया गया परिवर्तन मानव-स्वभाव के आदिम तत्त्वों से उसे छुटकारा दिलाने के लिए पर्याप्त नहीं है। प्राणिक आवेगों का सही रूपान्तरण केवल एक शर्त पर किया जा सकता है कि व्यक्ति आत्मा के नियंत्रण में कार्य करे।

मानसिक भाग के पाँच संस्तर हैं: भौतिक मन, प्रदीप्त मन, अन्तर्दर्शी मन, अधिमन और अतिमन। अधिकतर परेशानियाँ भौतिक मन में ही देखी जाती हैं। इसमें विचार आते रहते हैं और गूँजते रहते हैं। इन विचारों का आधार





स्वभावगत क्रिया, मामूली स्वार्थ, दुःख और सुख होते हैं। असंख्य विचार, प्रत्येक प्रकार के विचार इस जटिलता के साथ एक दूसरे में इस तरह गुथमगुथा होते हैं कि उनमें से किसी को अलग करके समझना लगभग असंभव हो जाता है। व्यक्ति जितना उन्हें दूर भगाना चाहता है, वे उतने ही उसके मन में प्रवेश करते हैं। यदि कोई उन्हें दबाना चाहता है तो वे और क्रियाशील हो जाते हैं। इस स्थिति से निपटने के लिए दो रास्ते हैं:

(1) तटस्थ खड़े होकर अपने विचार को देखें कि यह कौन-सी चीजों के पीछे दौड़ने से इन्कार कर रहा है।

(2) इस दशा में तब तक ध्यान करें जब तक शान्ति भौतिक मन को अपने नियंत्रण में न ले ले और इन छोटी-छोटी क्रियाओं को प्रतिस्थापित न कर दे। इस अभ्यास में लम्बा समय लगेगा। मन को शान्त रहना सीखना होगा। मन को सीधे शान्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि मन के अधिकतर यांत्रिक भाग कभी भी क्रियाहीन हो ही नहीं सकते। यह न रुकने वाली रिकार्डिंग मशीन की भाँति चलता रहता है। यह जो कुछ रिकार्ड करता है उसकी पुनरावृत्ति तब तक करता रहता है जब तक इसे रोका न जाय। साधारण मन के ऊपर अपनी चेतना को ले जाने का सबसे अच्छा साधन है कि चेतना को उच्चतर क्षेत्र में ले जाया जाय जो सदैव प्रकाशित रहता है। इस क्षेत्र में प्राप्त की गई मानसिक शान्ति स्थायी होती है।

आध्यात्मिक अथवा चैत्यिक स्तर हमारे भीतर बहुत गहरे स्थित होता है जो कि मानसिक एवं प्राणिक स्तरों से ढका रहता है। चैत्यिक स्तर को भौतिक स्तर पर लाया जाना चाहिए। यह ईश्वर के प्रति अभीप्सा एवं सतत ध्यान से किया जा सकता है। ईश्वर सभी के भीतर रहता है बस हमें उसकी अनुभूति करनी है। यदि हम शान्तचित्त होकर अपने भीतर की आवाज़ को सुनें तो हमें स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायेगा कि वह आवाज़ ईश्वर की ही आवाज़ है। हमें अपने भीतर ईश्वर के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित होना है। समर्पित होने के लिए व्यक्ति को स्वयं के प्रति जागरूक होना होगा। उसे अपनी चेतना एवं अपने विचार, अनुभूति तथा आवेग में अन्तर को पहचानना होगा। सर्वप्रथम व्यक्ति को अपनी चेतना को केन्द्रित करना है। उसे यह देखना होगा कि उसकी चेतना उसका शरीर नहीं है। शरीर के बाद उसे चेतना को अपनी भावनाओं एवं आवेगों में देखना होगा। जब उसे यह ज्ञान हो जाय कि इनमें भी उसकी चेतना नहीं है। तब वह अपनी शुद्ध चेतना को पहचान लेगा। इस चेतना को प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति का जीवन आनन्द से लबरेज़ हो जाता है। सांसारिक आवेग जल के ऊपर की लहरों की भाँति आते-जाते रहते हैं, उनका कोई भी प्रभाव व्यक्ति पर नहीं पड़ता है। एक बार जब व्यक्ति अपने विशुद्ध रूप से जुड़ जाता है, तब वह समस्त संसार को अपना मानने लगता है, कोई भी चीज उसके लिए परायी नहीं रह जाती है। इस तरह का जीवन ही वर्तमान दुःखी एवं अशान्त जीवन से मुक्ति का पथ दिखा सकता है। अतः हमें अपने अंतःकरण से जुड़कर और उसकी अनुमति से ही कार्य करना चाहिए, तभी हम सांसारिक जीवन में दैवीय अनुभूति कर सकते हैं। इसी रहस्य को बताने के लिए हमारे ऋषियों ने अपनी अंतर्दृष्टि से जो ज्ञान प्राप्त किया, वह वेदान्त में संग्रहीत है।

संसार का जीवन अपने स्वभाव में अशान्ति का क्षेत्र है-उचित रूप में उसमें से गुज़रने के लिए मनुष्य को अपना जीवन और कर्म भगवान् को अर्पित करना होता है और अन्तस्थ भगवान् की शान्ति के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है। जब मन अचञ्चल हो जाता है तो मनुष्य भगवती माँ को अपने जीवन को सहारा देते हुए अनुभव कर सकता है और प्रत्येक चीज़ को उनके हाथों में सौंप सकता है।

- श्रीअरविन्द



## पालता की पहचान

- संकलन

जंगल में शेर-शेरनी शिकार के लिये दूर तक गये अपने बच्चों को अकेला छोड़कर ।

जब देर तक नहीं लौटे तो बच्चे भूख से छटपटाने लगे ।

उसी समय एक बकरी आई, उसे दया आई और उसने उन बच्चों को दूध पिलाया फिर बच्चे मस्ती करने लगे ।

शेर-शेरनी आये, बकरी को देख लाल पीले होकर शेर हमला करता उससे पहले बच्चों ने कहा इसने हमें दूध पिलाकर बड़ा उपकार किया है नहीं तो हम मर जाते ।

अब शेर खुश हुआ और कृतज्ञता के भाव से बोला हम तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूलेंगे, जाओ आजादी के साथ जंगल में घूमो फिरो मौज करो ।

अब बकरी जंगल में निर्भयता के साथ रहने लगी यहाँ तक कि शेर के पीठ पर बैठकर भी कभी-कभी पेड़ों के पत्ते खाती थी ।

यह दृश्य चील ने देखा तो हैरानी से बकरी से पूछा तब उसे पता चला कि उपकार का कितना महत्व है ।

चील ने यह सोचकर कि एक प्रयोग मैं भी करती हूँ, चूहों के छोटे छोटे बच्चे जो दलदल में फंसे थे निकलने का प्रयास करते पर उनकी कोशिश बेकार ।

चील ने उनको पकड़-पकड़ कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया ।

बच्चे भीगे थे सर्दी से काँप रहे थे तब चील ने अपने पंखों में छुपाया, बच्चों को बेहद राहत मिली ।

काफी समय बाद चील उड़कर जाने लगी तो हैरान हो उठी । चूहों के बच्चों ने उसके पंख कुतर डाले थे ।

चील ने यह घटना बकरी को सुनाई । तुमने भी उपकार किया और मैंने भी फिर यह फल अलग क्यों? ?

बकरी हँसी फिर गंभीरता से कहा....

उपकार करो, तो शेरों पर करो ।

चूहों पर नहीं ।

क्योंकि कायर कभी उपकार को याद नहीं रखते और बहादुर कभी उपकार नहीं भूलते...!!!

(बहुत ही गहरी बात है, समझो तो ठीक)

- साभार

### चैत्य शिक्षा:

“प्रत्येक मनुष्य अपने भीतर एक बड़ी चेतना की संभावना को छिपाए रहता है जो उसके वर्तमान जीवन की सीमाओं से परे जाती है और उसे एक उच्च और व्यापक जीवन में साझा करने में सक्षम बनाती है । मानव मानसिक चेतना क्या नहीं जानती और क्या नहीं कर सकती, यह चेतना जानती और करती है । यह एक प्रकाश की तरह है जो अस्तित्व के केंद्र में चमकता है, बाहरी चेतना के मोटे आवरणों के माध्यम से विकीर्ण होता है ।

-मां

## नववर्ष के आगमन की प्रार्थना

हे समस्त वारदातों के परम दाता प्रभु ।  
 तुम ही इस जीवन को सार्थकता करते हो प्रदान  
 बनाते हो इसे पवित्, शुभ एवं महान!  
 तुम ही हमारी नियति के स्वामी हो  
 और हमारी अभीप्सा के एकमेव लक्ष्य हो ।  
 तुम्हें समर्पित है इस नववर्ष का प्रथम मुहूर्त ।  
 प्रभु कृपा करो कि इस समर्पण द्वारा  
 गौरवान्वित हो उठे यह सकल वर्ष  
 जो लोग तुम्हारी अभीप्सा करते हैं वे तुम्हें ढूँढ़ लें  
 जो तुम्हें सच्ची राहों पर खोजते हैं वे तुम्हें प्राप्त कर लें और वह सब जो दुख झेलते हैं, नहीं जानते उसका निराकरण  
 वे अनुभव कर सकें कि उनकी तमोग्रस्त चेतना की कठोरता को प्रतिपल तोड़ रहा है तुम्हारा प्रकाश ।  
 हे नाथ! मैं महान कृतज्ञता एवं असीम भक्ति भावना से नतमस्तक हूँ तुम्हारी कल्याणी ज्योति के समक्ष और  
 समस्त पृथ्वी की ओर से मैं करती हूँ तुम से नम्र निवेदन,  
 कि तुम अपने प्रेम एवं प्रकाश की पूर्ण बहुलता के साथ, स्वयं को करो अधिकाधिक प्रकट एवं अभिव्यक्त ।

तुम ही हमारे विचारों एवं भावनाओं के स्वामी बनो ।  
 तुम ही सर्वस्व बनो हमारे सभी कर्मों एवं कार्यों के  
 क्योंकि तुम ही हो हमारी वास्तविकता के सच्चे स्वरूप । तुमसे रहित यह जीवन असत्य एवं असहाय है ।  
 तुमसे रहित सब कुछ दुखमय अंधकार है, भ्रमजाल है । तुमसे ही जीवन है, उल्लास है, एवं प्रकाश है ।  
 तुममें ही परमोच्च शांति का वास है ।

-साभार

“पुरानी योग प्रणालियां अध्यात्म और जीवन के बीच सामंजस्य या ऐक्य स्थापित नहीं कर सकीं ।  
 जगत को माया या अनित्य लीला कहकर उन्होंने उड़ा दिया है । इसका फल हुआ है जीवनी शक्ति का  
 हास भारत की अवनति । . . यदि कुछ सन्यासी और बैरागी साधु सिद्ध मुक्त हो जाएं कुछ भक्त प्रेम  
 से भाव से आनंद से अधीर होकर नृत्य करें और समस्त जाती प्राण ही बुद्धि हीन होकर बर्तनों भाव में  
 डूब जाए यह भला कैसे अध्यात्म सिद्धि है?”

-श्री अरविन्द







## नव जन्म

श्रीअरविन्द का कथन है कि जो व्यक्ति भगवान का चुनाव करता है वह व्यक्ति पहले से ही भगवान द्वारा चुना हुआ होता है। भगवत्ता ही वास्तव में जीवन को उसका असली मूल्य प्रदान करती है, जिसके अभाव में हम निरे पशु हैं। हमारा वास्तविक जीवन तभी प्रारंभ होता है जब हम भगवान की ओर उन्मुख होते हैं। इस विषय में एक कहानी मनन करने योग्य है :

एक गृहस्थ का घर और चलती हुई जिंदगी। तभी किसी साधु ने द्वार पर दस्तक दी।

“भिक्षां देहि। भिक्षां देहि! भगवान तुम्हारा कल्याण करें।” तत्क्षण, आवाज सुनते ही घर की बहू भिक्षान्न लेकर बाहर निकली। बहू ने साधु को प्रणाम किया फिर भिक्षान्न उनके पात्र में डाल दिया। साधु उसके शील और व्यवहार को देखकर प्रभावित हुए और पूछा:

“भद्रे! तुम्हारी जय हो, कल्याण हो, सौभाग्यवती होओ। पुत्री! तुम मुझे यह तो बताओ कि इस समय तुम्हारी उम्र कितनी है?” बहू ने उत्तर दिया- “२० वर्ष महाराज।”

“और तुम्हारे पति की”

“१५ वर्ष”

तब तक उसकी सास भी वहां पहुँच चुकी थी। अपनी बहू की इस तरह अनर्गल बातें सुनकर सास की तयोरियाँ चढ़ गईं और वे क्रोध से आग हो उठीं।

तभी महात्मा जी ने बहू से तीसरा प्रश्न किया:

“और तुम्हारी सास की उम्र?”

“१० वर्ष”

अब तो सास का धैर्य समाप्त हो गया उनके क्रोध का पारा सातवें आसमान पर पहुँच गया और ये गाली गलौज तथा हाथापाई पर उतर आई।

इस पर महात्मा जी ने बीच बचाव किया और समझाया कि माता जी आप क्रोध न करें, पहले उसकी पूरी बात तो सुन लें। तदुपरांत साधु ने बहू से चौथा प्रश्न किया “तुम्हारे श्वसुर की उम्र क्या है?” इस पर बहू ने उत्तर दिया “वह तो अभी पैदा ही नहीं हुआ।”

बहू की ऐसी अटपटी बातें सुनकर साधु को भारी आश्चर्य हुआ, वे चकित रह गए और कहा -

“भद्रे तुम्हारी बातें बहुत ही रहस्यपूर्ण हैं। क्या अपनी इस पहेली का खुलासा करोगी?”

इस पर बहू ने रहस्य का खुलासा किया और बताया

‘महात्मन् जब मैं मात्र १५ वर्ष की एक बालिका थी तभी हमारे गांव में एक योगी का आगमन हुआ। यद्यपि उस समय साधु-संत अथवा धर्म-कर्म में मेरी कोई रुचि नहीं थी, मैं इन्हें खाली ढोंग, पाखंड और अंधविश्वास ही समझती थी, लेकिन अपनी सखी-सहेलियों के आग्रहवश उनके साथ मैं वहां चली ही गई जहां योगी जी का प्रवचन था। फिर क्या





था योगी जी के प्रवचन से हमारे जीवन की एक-एक परत खुलने लगी। जैसे हम अपनी घोर निद्रा से जाग उठे हों और हमें इस बात का ज्ञान हुआ कि हम कौन हैं। इस संसार में आने का हमारा प्रयोजन और कर्तव्य क्या है? और यह सब जानकर संसार के भौतिक जीवन से हमारा मोहभंग हुआ तथा मैं अपनी अन्तरात्मा व दिव्य जीवन के प्रति सचेत हुई। हे महात्मन्! इसे ही मैं अपना असली जन्म समझती हूँ। वैसे तो गिनती के लिए इस समय मैं ३५ वर्ष की हूँ लेकिन सच पूछिये तो मेरा असली भागवत जीवन मात्र २० ही वर्ष का है। शेष जीवन तो मैंने यों ही गवाँ दिया। आगे और सुनिये-

“ २० वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ और मैं अपनी ससुराल आई, तभी से मेरे इस भागवत जीवन का प्रभाव मेरे पतिदेव पर भी पड़ा तब से हम दोनों एक ही दिव्य पथ के पथिक हैं। मेरे इस विवाह काल के अब १५ वर्ष पूरे होने को हैं अतः मैंने अपने पतिदेव की उम्र १५ वर्ष बताई है जो उनके नए दिव्य जीवन की उम्र है।

“हमारे विवाह के पश्चात् कालांतर में हम दोनों का प्रभाव अपनी सास माँ पर भी पड़ना शुरू हुआ इसलिए मैंने उनकी उम्र मात्र १० वर्ष की बताई है।

“लेकिन बेचारे हमारे ससुर जी उन्हें तो अपनी कमाई और धंधे से फुरसत ही नहीं, रात-दिन अपने गृह कारज और नाना जंजालों में इस तरह डूबे हैं कि वे कभी अपने असली जीवन के बारे में सोच ही नहीं सकते, इसीलिए मैं कहती हूँ कि अभी तो वह पैदा ही नहीं हुए।”

आज हम सबकी स्थिति “श्वसुर” जैसी ही है। हम सब इतने जरूरी कामों में व्यस्त हैं कि किसी को भगवान के लिए फुरसत ही नहीं। बेतहाशा सबकी दौड़-धूप जारी है। लेकिन कहाँ जाना है इस बात का किसी को पता ही नहीं। हमारे जीवन का उद्देश्य कहीं खो गया है और हम सब असली रत्न छोड़कर खाली ककड़-पत्थर बटोरने में लगे हैं।.....

(भागवत जीवन, त्रियुगी नारायण, १४२ - १४४)

उदित सूर्य में जरा-मरण से मुक्त वही है,  
आधी रजनी है फैली उसकी काली छाया,  
अब अंधा तमभी अंधकार में ही सोया था,  
ध्यानस्थ अकेला वह विराट् था वहां समाया ।

- श्री अरविंद  
कौन( Who)से



## भगवद्वाणी (भागवत मुहूर्त्त से)

यह सब कुछ इदंसवी है 'ससीम' के द्वारा अधिकृत 'असीम' और 'असीम' के द्वारा जीवन रूप में गृहीत 'ससीम' ।

'ससीम' है 'असीम' में स्थित अनित्य वस्तु अथवा उसमें होनेवाला एक पुनरावर्तन, अतएव एकमात्र असीम ही है नितांत रूप से 'सत्य' । लेकिन वह 'सत्य' चूंकि सदा अपनी यह 'छाया' निक्षिप्त करता रहता है और चूंकि 'ससीम' के द्वारा ही 'असीम' का बोधगम्य होता है, इसलिए अवश्य ही हमें यह मानना होगा कि नाम रूपात्मक जगत भी कोई मिथ्या वस्तु नहीं है ।

'असीम' 'ससीम' के अंदर अपने को सीमांकित करता है, 'असीम' 'ससीम' के अंदर अपने (वास्तविक) स्वरूप की अवधारणा करता है । दोनो एक की पूर्ण सत्य के लिये आवश्यक हैं ।

'असीम' (अपनी अभिव्यक्ति की क्रिया में) 'ससीम' में आकर रुक जाता है, 'ससीम' (अपने वास्तविक स्वरूप को खोजता हुआ) सदा 'ससीम' के अंदर पहुँच जाता है । यही वह चक्र है जो काल और शाश्वत के भीतर सदा सर्वदा घूमता रहता है ।

यदि कोई ऐसी वस्तु ही न होती जिसका अतिक्रमण किया जाता तो 'सर्वातीत सम्बन्धी धारणा स्वयं अपने-आप में अपूर्ण रह जाती । 'निराकार' का मूल्य ही क्या है जब तक कि वह 'आकार' की ओर न मुझे? और दूसरी ओर, किसी आकार का इसके सिवा और क्या सत्य या मूल्य है कि यह मानो एक छद्म रूप में 'अनिदेश्य' और 'अगोचर' को व्यक्त करता है?

यदि उस 'अपरिमेय' की असीम गहराईयों से नहीं तो और कौन-सी आधार भूमि से ये सारे अनगिनत रूप और आकार उत्पन्न हुये हैं? जिसने अज्ञेय में अपने ज्ञान को नहीं खोया है वह सब कुछ भी नहीं जानता । जिस जगत का वह इतनी बुद्धिमत्ता के साथ अध्ययन करता है वह भी उसे छलता और उस पर हँसता है । जब हम अज्ञेय के भीतर पहुँच जाते हैं जब यह सारा अन्य ज्ञान प्रामाणिक बन जाता है । जब हम निराकार में समस्त आकोरों की आहूति दे देते हैं तब सारे आकार एक साथ ही नगण्य और परम मूल्यवान बन जाते हैं ।

बाकी चीजों का जहाँ तक संबन्ध है, यही बात सब चीजों के लिये सत्य है । जिसका हमने त्याग नहीं किया है उसका कोई मूल्य नहीं है । त्याग ही मूल्यों को प्रकट करनेवाला महान तत्त्व है । जिस प्रकार ममस्त शब्द निश्चल-निरवता से प्रकट होते हैं उसी प्रकार सारे आकार 'अनंत' से उत्पन्न होते हैं । जब शब्द लौटकर नीरवता में पहुँच जाता है तो क्या वह सदा के लिये हो जाता है, अथवा, यह शाश्वत सामंजस्य में निवास करता है? जब कोई आत्मा लौटकर भगवान के पास जाता है तो क्या उसकी सत्ता का लोप हो जाता है, अथवा क्या वह उस (भगवान का) ज्ञान और आनन्द प्राप्त करता है, जिसमें वह प्रवेश करता है?

क्या विश्व का कभी अंत होता है? क्या वह भगवान के अपनी आत्मसत्ता विषयक समग्र विचार में शाश्वत रूप से निवास नहीं करता? जब तक शाश्वत मानों काल के बोझ से थक नहीं जाता, जब तक भगवान हृदय से पीड़ित नहीं होते तब तक भला विश्व सत्ता का अंत कैसा हो सकता है?

लय न तो आत्मा का, न विश्व का ही अंतिम लक्ष्य है, अपितु एक (आत्मा) का चरम लक्ष्य है अनंत आत्मोपलब्धि और दूसरे 'विश्व' का है परिवर्तन में भी चिर-अपरिवर्तनशील अपनी छंदोमयी की गतियों का अंतहीन अन्वेषण ।





अस्तित्व नकि लय सत्तामाल का संपूर्ण उद्देश्य ओर कार्य है। यदि सब वस्तुओं का आधार शून्य से होता तो उनका अंत भी शून्य ही होता; किन्तु उस दशा में मध्य भी शून्य ही होता।

यदि निर्विशेष एकत्व ही सृष्टि का आरंभ होता तो वही उसका अंत भी होता तो उसका अंत भी होता। किन्तु फिर निर्विशेष एकत्व के सिवा और कौनसा माध्यम यह वहाँ हो सकता?

विश्व सत्ता के मूल में एक व्यक्ति-तर्क निहित है, किन्तु हमारा विचार स्वयं अपने को तोड़क-मरोड़ और स्वयं अपनी ही अंतिम अनिवार्य आवश्यकता के प्रति विद्रोह कर उस (तर्क) से बचने की कोशिश है, मानो कोई साँप अपने ही शरीर के चारों ओर कुंडली मारकर अपने-आपसे बचने की कोशिश करता हो। बस उसका कुंडली मारना बन्द कर दो और उसे सीधे इस सारी बात की जड़ में पहुँच जाने दो, तो फिर वह देखेगा कि वहाँ कोई प्रथम और अंतिम चीज नहीं है, न कोई आदि है न अंत, अपितु है केवल वस्तुओं और घटनाओं के अनुक्रमों ओर अन्योन्याश्रयों की ही अभिव्यक्ति। अनुक्रम और अन्योन्याश्रम तो परिप्रेक्षण की विधि है, व उस वस्तु का वास्तविक मानदंड नहीं बनाये जा सकते जिस कि वे अभिव्यक्त करते हैं।

ठीक इसीलिये कि भगवान एकमेवा द्वितीय, अनिर्वचनीय और आकारातीत है, वे अनंत परिभाषा के योग्य हैं, अनंत गुणों को धारणा करने में समर्थ हैं, असंख्य रूपों में वे प्राप्तव्य हैं और वे अनंत आत्मबहुलीकरण के आनंद को धारण करने की क्षमता रखते हैं। ये दोनो वस्तुये साथ-साथ रहती हैं और वास्तव में उन्हें एक-दूसरी से पृथक नहीं किया जा सकता।

-प्रणत

## दिव्य जीवन (से) (तीन सोपान)

आत्मा के अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति में तीन भूमिकार्यें हैं जो कि एक ही ज्ञान के तीन भाग भी हैं। पहली भूमिका है आत्मा का आविज्ञान; यह आत्मा विचार, आवेग और कामना वाला बाहरी आत्मा नहीं है अपितु हमारे भीतर अंत गूढ़ चैत्य तत्व, दिव्य तत्व है। जिस समय वह प्रकृति के ऊपर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है, जिस समय हम सचेतन भाव से अपने -आपको आत्मा अनुभव करते हैं और जब मन, प्राण और शरीर उसके उपकरण के रूप में होकर अपना सच्चा स्थान ग्रहण करते हैं, तब हमें अपने भीतर एक ऐसे पथ प्रदर्शक का अनुभव होता है जो सत्य को, शुभ को, सत्ता के सच्चे आनन्द और सौन्दर्य को जानता है, अपने ज्योतिमय विधान के द्वारा हृदय और बुद्धि को संयत करता है और हमारी सत्ता और हमारे जीवन की आध्यात्मिक पूर्णता की ओर ले जाता है। यहाँ तक कि जिस समय अज्ञान की अंधकारमयी क्रियायें होती रहती हैं तब भी हमारे भीतर एक ऐसा साक्षी रहता है जो देखता एक विवेक करता है, ऐसा संजीव प्रकाश होता है जो प्रकाशित करता है, ऐसी इच्छा दिखाई देती है जो पथ भ्रष्ट होना अस्वीकारव करती है और मन के सत्य को उसके विपर्यय से पृथक् करती है, प्राण के सच्चे उत्साह और उसकी समृद्ध गति को प्राणिक आवेश और हमारी प्राणिक प्रकृति के मलिन



## भगवान और उनकी उपस्थिति

श्रीमाताजी हिन्दी रूपान्तरः विमला गुप्ता

भगवान् से हमारा क्या तात्पर्य

वैसे तो अनेकानेक सौ उत्तर हो सकते हैं किन्तु कुछ उत्तर यहाँ प्रस्तुत हैं:-

- उस प्रभु को जिया जा सकता है परिभाषित नहीं किया जा सकता ।
- उसे जानने पर दबाव मत दो, 'वैसे हो जाने' का भाव ग्रहण करो (उनके जैसे बनो)
- भगवान् वह समग्र सत्ता है जो सबको भरपूर एवं परिपूर्ण बनाती है ।
- भगवान् वह परमसद्गुण है जिसमें से सबकुछ प्रसारित होता है, जिसमें सबकुछ निवास करता है, और उस परम प्रभु की ओर पुनः लौटता है जो अभी मानव अज्ञान के आवरण से ढका है, आत्मा का लक्ष्य है । अपने मूल उच्च सत्य में भगवान् परब्रह्म हैं और असीम समग्र चेतना हैं, अनन्त सत्ता हैं, शक्ति और आनन्द है ।
- भगवान् ही वह परम 'सद् वस्तु' है, समस्त विश्व में जो कुछ भी वर्तमान है प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष है उसका मूल उद्गम जिसके प्रति हम क्रमशः उन्नत होते हुए सचेतन होते हैं, अर्थात् भगवान् से हमारा तात्पर्य है:-
- वह समस्त ज्ञान जो हमें अर्जित करना है ।
- वह समग्र शक्ति जो हमें हासिल करनी है ।
- वह समस्त प्रेम जो हमें जीना है ।
- वह समस्त निपुणता जो हमें प्राप्त करनी है ।
- वह सब उन्नतप्रद एवं सामंजस्यपूर्ण संतुलन जो हमें
- निर्मित करना है, प्रकाश और आनन्द में जिसे अभिव्यक्त करना है ।
- सम्पूर्ण विश्व भगवान् की ही अभिव्यक्ति है, उन्हीं का मूर्तरूप जो पूर्णतया अचेतना से शुरू होता है ओर धीरे-धीरे उच्च चेतना की ओर उन्मुख होता है । चेतना ही वह श्वास है जो सभी तत्वों एवं सत्ताओं को जीवन प्रदान करती है ।
- इस सत्य को एक क्षण के लिए भी मत भूलो कि जो कुछ समस्त विश्वों में सृजित हुआ है वह सब 'उसी एक 'परम सत्ता' के द्वारा और 'उसी में से' सृष्ट हुआ है । वह जो केवल इस चराचर जगत में उपस्थित ही नहीं, वरन वही यह सब कुछ है, सब कुछ जो भी भिन्नता एवं विभेद हमें दिखाई देते हैं वे मात्र कथन एवं आविर्भाव में वैभिन्यता के कारण हैं ।
- हम जो कुछ भी करें, हमें सदैव भगवान् को स्मरण करना चाहिए उन्हीं के हेतु कर्म करना चाहिए । हमें एकमाल विशेषतः भगवान् से संबंधित होना चाहिए और इससे भी ऊपर जो कुछ भी अपेक्षा करनी है, उन्हीं की दिव्य शक्ति, उच्चतम शान्ति समग्र आनन्द, प्रेम और प्रकाश से ही रखनी चाहिए । भगवान् बहुत दयालु हैं और हमें वह सब कुछ देते हैं जिसकी हमें अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रता से अग्रसर होने में आवश्यकता है । यदि हम उनसे गहन सत्यनिष्ठा,





आस्था और विश्वास, भक्तिभाव एवं कृतज्ञतापूर्वक अभीप्सा एवं साहस बनाए रखते हुए सम्पूर्ण आत्मसमर्पण, आत्मदान एवं स्वयं को उनके समक्ष खोलकर और ग्रहणशीलता के मनोभाव से निवेदन करेंगे, तो वे निश्चयपूर्वक हमें अपना सहारा प्रदान करेंगे। जितने अधिक गहन भाव से हम उनके प्रति समर्पित होंगे, हम स्वयं को उन्हें सौंपेगे उतना ही अधिक हम उनकी ज्योतिर्मय सच्ची उपस्थिति को अनुभव करने में तैयार कर दिए जायेंगे और उनके योग्य होते जायेंगे।

- हमें इच्छापूर्वक निश्चयपूर्वक स्वयं को भगवान् के सामीप्य में रखना है और अंतिम विजय सुनिश्चित है।
- केवल भगवान् ही हमारे नित्य एवं निरन्तर पथ प्रदर्शक होने चाहिए।
- केवल भगवान् ही हमें सम्पूर्ण सुरक्षा दे सकते हैं।
- केवल भगवान् पर ही अपना ध्यान एकाग्र रखना हमें जीवनी शक्ति, विश्वास एवं उपलब्धि प्रदान करता है।
- भगवान् को प्रेम करो और वे सदैव तुम्हारे समीप होंगे।
- भगवान् हमारी परम मित्र और पथ प्रदर्शक है वे हमें कभी निराश नहीं करते।
- भगवान् हमारी समस्त शक्ति का मूल स्रोत है उनके समीप एवं संग होने पर प्रत्येक शक्ति बाधा को विजित किया जा सकता है।
- भगवान् की सहायता होने पर कुछ भी असंभव विनम्र किन्तु कार्यवाही में अत्यंत सशक्त है।
- भगवान् के प्रति सदैव सत्यनिष्ठा बने रहो और तुम निरन्तर शान्ति और सुरक्षा का अनुभव करोगे।
- हमें सच्ची सहायता और सच्ची खुशी के लिए सदा भगवान् पर निर्भर रहना चाहिए।
- केवल एकमात्र दिव्य शक्ति ही हमारे जीवन और कार्य की प्रेरक शक्ति होनी चाहिए।
- हमें निःशेष रूप से स्वयं को भगवान् को दे देना चाहिए जिससे हम दिव्य कृपा को प्राप्त कर सकें।
- हमें अपना संकल्प एवं इच्छा दिव्य कृपा को भेंट कर देने चाहिये क्योंकि यही कृपा सर्वगतिविधियों एवं कर्मों को संपन्न करती है।
- प्रत्येक परिस्थिति में जो सर्वश्रेष्ठ है वही हम करें और परिणाम भगवान् के निर्णय पर छोड़ दे।
- ऐसा क्यों है कि हम अपने अन्दर भगवान् की उपस्थिति के प्रति अभिज्ञ नहीं हैं और हम कैसे इसके प्रति जागरूक होंगे?
- क्योंकि हमारी बाह्य चेतना इतनी धुंधली, इतनी लघु और संकीर्ण है कि यह अपने सच्चे आत्मतत्त्व के विषय में, जो कि हमारे अन्दर भगवान् की उपस्थिति है, किंचित भी जागरूक नहीं है। इस उपस्थिति को जानने के लिए जो आवश्यक है वह एक अटल संकल्प, एक दृढ़ प्रतिज्ञा एवं अथक धैर्य। व्यक्ति को अपनी अभीप्सा अविचलित रखनी होगी और गहन गांभीर्य से अपनी अंतरात्मा क गहराई में पहुँचना होगा।
- पहला कदम है कि हमें आंतरिक सत्ता को जानने की गहन इच्छा होनी चाहिए और उन्नति के लिए एक अटल सनी होगी। निश्चय करने का अर्थ है अपने सच्चे तत्व अंतरात्मा का संकल्प और इस संकल्प का अर्थ है सत्य की शक्ति को पाना और धारण करना।





- इस अटल धारणा में संपूर्ण सत्यनिष्ठा ही एकमात्र हमारी सुरक्षा है। हमारी सत्य निष्ठा अटल और चरम होनी चाहिए। यदि हम 'कृत संकल्प' और सत्यनिष्ठा नहीं है तो हम अगले ही कदम पर गिर जायेंगे और अपना सर तोड़ लेंगे। सब प्रकार की विरोधी ताकतें और दुर्भावना की सत्ताएँ हमारी किंचित भी आशंका और असावधानी की दरार की निगरानी में सदैव तत्पर हैं और मैजूद हैं, वे तुरन्त झपटेंगी और उस दरार से होकर हमें असमंजस, विमूढ़ता एवं भ्रम में डाल देंगी। एक सच्ची प्रार्थना निश्चित ही ऊपर से अपना प्रत्युत्तर पाने में सक्षम होती है।
- और इन सभी विधि प्रणालियों एवं प्रयासों को चरितार्थ करने के लिए हमारे इस जीवनरूपों यंत्र के शुद्धिकरण की बहुत आवश्यकता है। अर्थात् मन, प्राण और शरीर के स्वच्छ, विशुद्ध होने की आवश्यकता। इसके लिए जो बातें अभ्यास में लानी है वे है:-
- शान्त अचंचल एवं स्थिर बने रहना, प्रत्येक परिस्थिति में, घटना अवस्था और उपलब्धि में तथा सफलता में, सर्वदा सहज शान्त बने रहना और प्रत्येक कार्य को भगवान् को निवेदित कर देना और सभी कुछ फल एवं परिणाम भगवान् के हाथों में सौंप देना।
- अपने प्रति ईमानदार होना, और किसी भी अव्यवस्थित विक्षोभों एवं उद्वेगों के द्वारा या उनके कारण बाहरी बदलती हुई अवस्थाओं से विचलित एवं विक्षुब्ध न होना, यही वह तरीका और उपाय है जिससे भगवान् की उपस्थिति को संसिद्ध एवं प्रत्यक्ष अनुभूत किया जा सकता है।
- उस प्रभु को जिया जा सकता है परिभाषित नहीं किया जा सकता।
- उसे जानने पर दबाव मत दो, 'वैसे हो जाने' का भाव ग्रहण करो (उनके जैसे बनो)
- भगवान् वह समग्र सत्ता है जो सबको भरपूर एवं परिपूर्ण बनाती है।
- भगवान् वह परमसद्गुस्तु है जिसमें से सबकुछ प्रसारित होता है, जिसमें सबकुछ निवास करता है, और उस परम प्रभु की ओर पुनः लौटता है जो अभी मानव अज्ञान के आवरण से ढका है, आत्मा का लक्ष्य है। अपने मूल उच्च सत्य में भगवान् परब्रह्म हैं और असीम समग्र चेतना हैं, अनन्त सत्ता हैं, शक्ति और आनन्द है।
- भगवान् ही वह परम 'सद् वस्तु' है, समस्त विश्व में जो कुछ भी वर्तमान है प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष है उसका मूल उद्गम जिसके प्रति हम क्रमशः उन्नत होते हुए सचेतन होते हैं, अर्थात् भगवान् से हमारा तात्पर्य है:-
- वह समस्त ज्ञान जो हमें अर्जित करना है।
- वह समग्र शक्ति जो हमें हासिल करनी है।
- वह समस्त प्रेम जो हमें जीना है।
- वह समस्त निपुणता जो हमें प्राप्त करनी है।
- वह सब उन्नतप्रद एवं सामंजस्यपूर्ण संतुलन जो हमें
- निर्मित करना है, प्रकाश और आनन्द में जिसे अभिव्यक्त करना है।
- सम्पूर्ण विश्व भगवान् की ही अभिव्यक्ति है, उन्हीं का मूर्त्तरूप जो पूर्णतया अचेतना से शुरू होता है ओर धीरे-धीरे उच्च चेतना की ओर उन्मुख होता है। चेतना ही वह श्वास है जो सभी तत्वों एवं सत्ताओं को जीवन प्रदान करती है।





- इस सत्य को एक क्षण के लिए भी मत भूलो कि जो कुछ समस्त विश्वों में सृजित हुआ है वह सब 'उसी एक 'परम सत्ता' के द्वारा और 'उसी में से' सृष्ट हुआ है। वह जो केवल इस चराचर जगत में उपस्थित ही नहीं, वरन वही यह सब कुछ है, सब कुछ जो भी भिन्नता एवं विभेद हमें दिखाई देते हैं वे मात्र कथन एवं आविर्भाव में वैभिन्नता के कारण हैं।
- हम जो कुछ भी करें, हमें सदैव भगवान् को स्मरण करना चाहिए उन्हीं के हेतु कर्म करना चाहिए। हमें एकमात्र विशेषतः भगवान् से संबंधित होना चाहिए और इससे भी ऊपर जो कुछ भी अपेक्षा करनी है, उन्हीं की दिव्य शक्ति, उच्चतम शान्ति समग्र आनन्द, प्रेम और प्रकाश से ही रखनी चाहिए। भगवान् बहुत दयालु हैं और हमें वह सब कुछ देते हैं जिसकी हमें अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रता से अग्रसर होने में आवश्यकता है। यदि हम उनसे गहन सत्यनिष्ठा, आस्था और विश्वास, भक्तिभाव एवं कृतज्ञतापूर्वक अभीप्सा एवं साहस बनाए रखते हुए सम्पूर्ण आत्मसमर्पण, आत्मदान एवं स्वयं को उनके समक्ष खोलकर और ग्रहणशीलता के मनोभाव से निवेदन करेंगे, तो वे निश्चयपूर्वक हमें अपना सहारा प्रदान करेंगे। जितने अधिक गहन भाव से हम उनके प्रति समर्पित होंगे, हम स्वयं को उन्हें सौंपेगे उतना ही अधिक हम उनकी ज्योतिर्मय सच्ची उपस्थिति को अनुभव करने में तैयार कर दिए जायेंगे और उनके योग्य होते जायेंगे।
- हमें इच्छापूर्वक निश्चयपूर्वक स्वयं को भगवान् के सामीप्य में रखना है और अंतिम विजय सुनिश्चित है।
- केवल भगवान् ही हमारे नित्य एवं निरन्तर पथ प्रदर्शक होने चाहिए।
- केवल भगवान् ही हमें सम्पूर्ण सुरक्षा दे सकते हैं।
- केवल भगवान् पर ही अपना ध्यान एकाग्र रखना हमें जीवनी शक्ति, विश्वास एवं उपलब्धि प्रदान करता है।
- भगवान् को प्रेम करो और वे सदैव तुम्हारे समीप होंगे।
- भगवान् हमारी परम मित्र और पथ प्रदर्शक है वे हमें कभी निराश नहीं करते।
- भगवान् हमारी समस्त शक्ति का मूल स्रोत है उनके समीप एवं संग होने पर प्रत्येक शक्ति बाधा को विजित किया जा सकता है।
- भगवान् की सहायता होने पर कुछ भी असंभव विनम्र किन्तु कार्यवाही में अत्यंत सशक्त है।
- भगवान् के प्रति सदैव सत्यनिष्ठा बने रहो और तुम निरन्तर शान्ति और सुरक्षा का अनुभव करोगे।
- हमें सच्ची सहायता और सच्ची खुशी के लिए सदा भगवान् पर निर्भर रहना चाहिए।
- केवल एकमात्र दिव्य शक्ति ही हमारे जीवन और कार्य की प्रेरक शक्ति होनी चाहिए।
- हमें निःशेष रूप से स्वयं को भगवान् को दे देना चाहिए जिससे हम दिव्य कृपा को प्राप्त कर सकें।
- हमें अपना संकल्प एवं इच्छा दिव्य कृपा को भेंट कर देने चाहिये क्योंकि यही कृपा सर्वगतिविधियों एवं कर्मों को संपन्न करती है।
- प्रत्येक परिस्थिति में जो सर्वश्रेष्ठ है वही हम करें और परिणाम भगवान् के निर्णय पर छोड़ दे।
- ऐसा क्यों है कि हम अपने अन्दर भगवान् की उपस्थिति के प्रति अभिज्ञ नहीं हैं और हम कैसे इसके प्रति जागरूक होंगे?







- क्योंकि हमारी बाह्य चेतना इतनी धुंधली, इतनी लघु और संकीर्ण है कि यह अपने सच्चे आत्मतत्त्व के विषय में, जो कि हमारे अन्दर भगवान् की उपस्थिति है, किंचित भी जागुरूक नहीं है। इस उपस्थिति को जानने के लिए जो आवश्यक है वह एक अटल संकल्प, एक दृढ़ प्रतिज्ञा एवं अथक धैर्य। व्यक्ति को अपनी अभीप्सा अविचलित रखनी होगी और गहन गांभीर्य से अपनी अंतरात्मा क गहराई में पहुँचना होगा।
- पहला कदम है कि हमें आंतरिक सत्ता को जानने की गहन इच्छा होनी चाहिए और उन्नति के लिए एक अटल सनी होगी। निश्चय करने का अर्थ है अपने सच्चे तत्त्व अंतरात्मा का संकल्प और इस संकल्प का अर्थ है सत्य की शक्ति को पाना और धारण करना।
- इस अटल धारणा में संपूर्ण सत्यनिष्ठा ही एकमात्र हमारी सुरक्षा है। हमारी सत्य निष्ठा अटल और चरम होनी चाहिए। यदि हम 'कृत संकल्प' और सत्यनिष्ठा नहीं है तो हम अगले ही कदम पर गिर जायेंगे और अपना सर तोड़ लेंगे। सब प्रकार की विरोधी ताकतें और दुर्भावना की सत्ताएँ हमारी किंचित भी आशंका और असावधानी की दरार की निगरानी में सदैव तत्पर हैं और मैजूद हैं, वे तुरन्त झपटेंगी और उस दरार से होकर हमें असमंजस, विमूढ़ता एवं भ्रम में डाल देंगी। एक सच्ची प्रार्थना निश्चित ही ऊपर से अपना प्रत्युत्तर पाने में सक्षम होती है।
- और इन सभी विधि प्रणालियों एवं प्रयासों को चरितार्थ करने के लिए हमारे इस जीवनरूपों यंत्र के शुद्धिकरण की बहुत आवश्यकता है। अर्थात् मन, प्राण और शरीर के स्वच्छ, विशुद्ध होने की आवश्यकता। इसके लिए जो बातें अभ्यास में लानी है वे है:-
- शान्त अचंचल एवं स्थिर बने रहना, प्रत्येक परिस्थिति में, घटना अवस्था और उपलब्धि में तथा सफलता में, सर्वदा सहज शान्त बने रहना और प्रत्येक कार्य को भगवान् को निवेदित कर देना और सभी कुछ फल एवं परिणाम भगवान् के हाथों में सौंप देना।
- अपने प्रति ईमानदार होना, और किसी भी अव्यवस्थित विक्षोभों एवं उद्वेगों के द्वारा या उनके कारण बाहरी बदलती हुई अवस्थाओं से विचलित एवं विक्षुब्ध न होना, यही वह तरीका और उपाय है जिससे भगवान् की उपस्थिति को संसिद्ध एवं प्रत्यक्ष अनुभूत किया जा सकता है।
- उस प्रभु को जिया जा सकता है परिभाषित नहीं किया जा सकता।
- उसे जानने पर दबाव मत दो, 'वैसे हो जाने' का भाव ग्रहण करो (उनके जैसे बनो)
- भगवान् वह समग्र सत्ता है जो सबको भरपूर एवं परिपूर्ण बनाती है।
- भगवान् वह परमसद्गुस्तु है जिसमें से सबकुछ प्रसारित होता है, जिसमें सबकुछ निवास करता है, और उस परम प्रभु की ओर पुनः लौटता है जो अभी मानव अज्ञान के आवरण से ढका है, आत्मा का लक्ष्य है। अपने मूल उच्च सत्य में भगवान् परब्रह्म हैं और असीम समग्र चेतना हैं, अनन्त सत्ता हैं, शक्ति और आनन्द है।
- भगवान् ही वह परम 'सद् वस्तु' है, समस्त विश्व में जो कुछ भी वर्तमान है प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष है उसका मूल उद्गम जिसके प्रति हम क्रमशः उन्नत होते हुए सचेतन होते हैं, अर्थात् भगवान् से हमारा तात्पर्य है:-
- वह समस्त ज्ञान जो हमें अर्जित करना है।





- वह समग्र शक्ति जो हमें हासिल करनी है।
- वह समस्त प्रेम जो हमें जीना है।
- वह समस्त निपुणता जो हमें प्राप्त करनी है।
- वह सब उन्नतप्रद एवं सामंजस्यपूर्ण संतुलन जो हमें
- निर्मित करना है, प्रकाश और आनन्द में जिसे अभिव्यक्त करना है।
- सम्पूर्ण विश्व भगवान् की ही अभिव्यक्ति है, उन्हीं का मूर्तरूप जो पूर्णतया अचेतना से शुरू होता है और धीरे-धीरे उच्च चेतना की ओर उन्मुख होता है। चेतना ही वह श्वास है जो सभी तत्वों एवं सत्ताओं को जीवन प्रदान करती है।
- इस सत्य को एक क्षण के लिए भी मत भूलो कि जो कुछ समस्त विश्वों में सृजित हुआ है वह सब 'उसी एक 'परम सत्ता' के द्वारा और 'उसी में से' सृष्ट हुआ है। वह जो केवल इस चराचर जगत में उपस्थित ही नहीं, वरन वही यह सब कुछ है, सब कुछ जो भी भिन्नता एवं विभेद हमें दिखाई देते हैं वे माल कथन एवं आविर्भाव में वैभिन्यता के कारण हैं।
- हम जो कुछ भी करें, हमें सदैव भगवान् को स्मरण करना चाहिए उन्हीं के हेतु कर्म करना चाहिए। हमें एकमाल विशेषतः भगवान् से संबंधित होना चाहिए और इससे भी ऊपर जो कुछ भी अपेक्षा करनी है, उन्हीं की दिव्य शक्ति, उच्चतम शान्ति समग्र आनन्द, प्रेम और प्रकाश से ही रखनी चाहिए। भगवान् बहुत दयालु हैं और हमें वह सब कुछ देते हैं जिसकी हमें अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रता से अग्रसर होने में आवश्यकता है। यदि हम उनसे गहन सत्यनिष्ठा, आस्था और विश्वास, भक्तिभाव एवं कृतज्ञतापूर्वक अभीप्सा एवं साहस बनाए रखते हुए सम्पूर्ण आत्मसमर्पण, आत्मदान एवं स्वयं को उनके समक्ष खोलकर और ग्रहणशीलता के मनोभाव से निवेदन करेंगे, तो वे निश्चयपूर्वक हमें अपना सहारा प्रदान करेंगे। जितने अधिक गहन भाव से हम उनके प्रति समर्पित होंगे, हम स्वयं को उन्हें सौंपेगे उतना ही अधिक हम उनकी ज्योतिर्मय सच्ची उपस्थिति को अनुभव करने में तैयार कर दिए जायेंगे और उनके योग्य होते जायेंगे।
- हमें इच्छापूर्वक निश्चयपूर्वक स्वयं को भगवान् के सामीप्य में रखना है और अंतिम विजय सुनिश्चित है।
- केवल भगवान् ही हमारे नित्य एवं निरन्तर पथ प्रदर्शक होने चाहिए।
- केवल भगवान् ही हमें सम्पूर्ण सुरक्षा दे सकते हैं।
- केवल भगवान् पर ही अपना ध्यान एकाग्र रखना हमें जीवनी शक्ति, विश्वास एवं उपलब्धि प्रदान करता है।
- भगवान् को प्रेम करो और वे सदैव तुम्हारे समीप होंगे।
- भगवान् हमारी परम मित्र और पथ प्रदर्शक है वे हमें कभी निराश नहीं करते।
- भगवान् हमारी समस्त शक्ति का मूल स्रोत है उनके समीप एवं संग होने पर प्रत्येक शक्ति बाधा को विजित किया जा सकता है।
- भगवान् की सहायता होने पर कुछ भी असंभव विनम्र किन्तु कार्यवाही में अत्यंत सशक्त है।
- भगवान् के प्रति सदैव सत्यनिष्ठा बने रहो और तुम निरन्तर शान्ति और सुरक्षा का अनुभव करोगे।
- हमें सच्ची सहायता और सच्ची खुशी के लिए सदा भगवान् पर निर्भर रहना चाहिए।





- केवल एकमाल दिव्य शक्ति ही हमारे जीवन और कार्य की प्रेरक शक्ति होनी चाहिए।
- हमे निःशेष रूप से स्वयं को भगवान् को दे देना चाहिए जिससे हम दिव्य कृपा को प्राप्त कर सकें।
- हमें अपना संकल्प एवं इच्छा दिव्य कृपा को भेंट कर देने चाहिये क्योंकि यही कृपा सर्वगतिविधियों एवं कर्मों को संपन्न करती है।
- प्रत्येक परिस्थिति में जो सर्वश्रेष्ठ है वही हम करें और परिणाम भगवान् के निर्णय पर छोड़ दे।
- ऐसा क्यों है कि हम अपने अन्दर भगवान् की उपस्थिति के प्रति अभिज्ञ नहीं हैं और हम कैसे इसके प्रति जागरूक होंगे?
- क्योंकि हमारी बाह्य चेतना इतनी धुंधली, इतनी लघु और संकीर्ण है कि यह अपने सच्चे आत्मतत्व के विषय में, जो कि हमारे अन्दर भगवान् की उपस्थिति है, किंचित भी जागरूक नहीं है। इस उपस्थिति को जानने के लिए जो आवश्यक है वह एक अटल संकल्प, एक दृढ़ प्रतिज्ञा एवं अथक धैर्य। व्यक्ति को अपनी अभीप्सा अविचलित रखनी होगी और गहन गांभीर्य से अपनी अंतरात्मा क गहराई में पहुँचना होगा।
- पहला कदम है कि हमे आंतरिक सत्ता को जानने की गहन इच्छा होनी चाहिए और उन्नति के लिए एक अटल सनी होगी। निश्चय करने का अर्थ है अपने सच्चे तत्व अंतरात्मा का संकल्प और इस संकल्प का अर्थ है सत्य की शक्ति को पाना और धारण करना।
- इस अटल धारणा में संपूर्ण सत्यनिष्ठा ही एकमाल हमारी सुरक्षा है। हमारी सत्य निष्ठा अटल और चरम होनी चाहिए। यदि हम 'कृत संकल्प' और सत्यनिष्ठा नहीं है तो हम अगले ही कदम पर गिर जायेंगे और अपना सर तोड़ लेंगे। सब प्रकार की विरोधी ताकतें और दुर्भावना की सत्ताएँ हमारी किंचित भी आशंका और असावधानी की दरार की निगरानी में सदैव तत्पर हैं और मैजूद हैं, वे तुरन्त झपटेंगी और उस दरार से होकर हमें असमंजस, विमूढ़ता एवं भ्रम में डाल देंगी। एक सच्ची प्रार्थना निश्चित ही ऊपर से अपना प्रत्युत्तर पाने में सक्षम होती है।
- और इन सभी विधि प्रणालियों एवं प्रयासों को चरितार्थ करने के लिए हमारे इस जीवनरूपों यंत्र के शुद्धिकरण की बहुत आवश्यकता है। अर्थात् मन, प्राण और शरीर के स्वच्छ, विशुद्ध होने की आवश्यकता। इसके लिए जो बातें अभ्यास में लानी है वे है:-

- ▶▶ शान्त अचंचल एवं स्थिर बने रहना, प्रत्येक परिस्थिति में, घटना अवस्था और उपलब्धि में तथा सफलता में, सर्वदा सहज शान्त बने रहना और प्रत्येक कार्य को भगवान् को निवेदित कर देना और सभी कुछ फल एवं परिणाम भगवान् के हाथों में सौंप देना।
- ▶▶ अपने प्रति ईमानदार होना, और किसी भी अव्यवस्थित विक्षोभों एवं उद्वेगों के द्वारा या उनके कारण बाहरी बदलती हुई अवस्थाओं से विचलित एवं विक्षुब्ध न होना, यही वह तरीका और उपाय है जिससे भगवान् की उपस्थिति को संसिद्ध एवं प्रत्यक्ष अनुभूत किया जा सकता है।



## आश्रम - गतिविधियाँ



17 नवंबर वह तिथि है जिस दिन श्री मां ने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया था। यह दिन आश्रम में पूर्ण नीरवता दिवस (साइलेंस डे) के रूप में मनाया जाता है। दिन का प्रारंभ आश्रम की वरिष्ठ साधिका श्रीला दी के द्वारा भगवती मां के आह्वान के द्वारा किया गया। तत्पश्चात सारे दिन आश्रम के सभी क्रियाकलापों यथासंभव नीरवता के साथ संपन्न हुए, संध्या समय समाधि पर अभीप्सा के दीप प्रज्वलन के पश्चात ध्यान कक्ष में नीरव ध्यान द्वारा सबने श्रीमां का स्मरण किया।



24 नवंबर श्री अरविन्द आश्रम में सिद्धि दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस दिन श्री अरविन्द ने श्रीकृष्ण की चेतना को उतारकर अतिमानस की साधना के मार्ग का अन्वेषण किया था। आश्रम में पूरे दिन हर्ष और उल्लास छाया रहा। संध्या समय समाधि के चतुर्दिक मार्च पास्ट द्वारा सलामी दी गई, भक्ति संगीत के पश्चात अभीप्सा के दीप जलाए गए तथा प्रसाद वितरण हुआ।





29 नवंबर फिर प्रांजल जोहर के जन्मदिन को मनाते हुए आश्रम के युवा प्रशिक्षार्थी -



5 दिसंबर 1950को श्री अरविन्द अपने भौतिक शरीर का त्याग कर महासमाधि में लीन हो गए, आश्रम वासी 5दिसंबर से 9 दिसंबर तक महासमाधि के रूप में अपने गुरु का स्मरण करते हैं।





श्री स्मृति-कक्ष में कुछ पुनर्व्यवस्था के पश्चात 5 दिसंबर 2022 को तारा दीदी के द्वारा उद्घाटन किया गया ,तत्पश्चात इसे श्रद्धालुओं के दर्शनार्थ खोल दिया गया । इस शुभ अवसर पर आश्रम- वासियों के साथ अनेक भक्त -जन उपस्थित थे ।



5 दिसंबर को आश्रम प्रांगण में समाधि के निकट पारंपरिक रूप से द मदर्स इंटरनेशनल स्कूल के विद्यार्थियों ने श्री मां एवं श्री अरविंद के वचनों को उद्धृत करते हुए भक्ति संगीत प्रस्तुत किया और इस प्रकार महायोगी श्री अरविंद के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की । बच्चों के इस भक्तिभाव की गुंजार संपूर्ण आश्रम प्रांगण में छा गई थी ।

संध्या समय भक्ति संगीत के पश्चात अभीप्सा के दीप जलाए गए तथा प्रसाद वितरण हुआ ।





श्री अरविंद आश्रम के व्यवसायिक प्रशिक्षार्थियों के साथ ब्लैक रॉक कंपनी के कार्यकर्ता -

